रुपये 25/-

अंक 24

दिसम्बर, 2006

चन्द्रताल

लाहुल-स्पीति की साहित्यिक-सांस्कृतिक त्रैमासिक

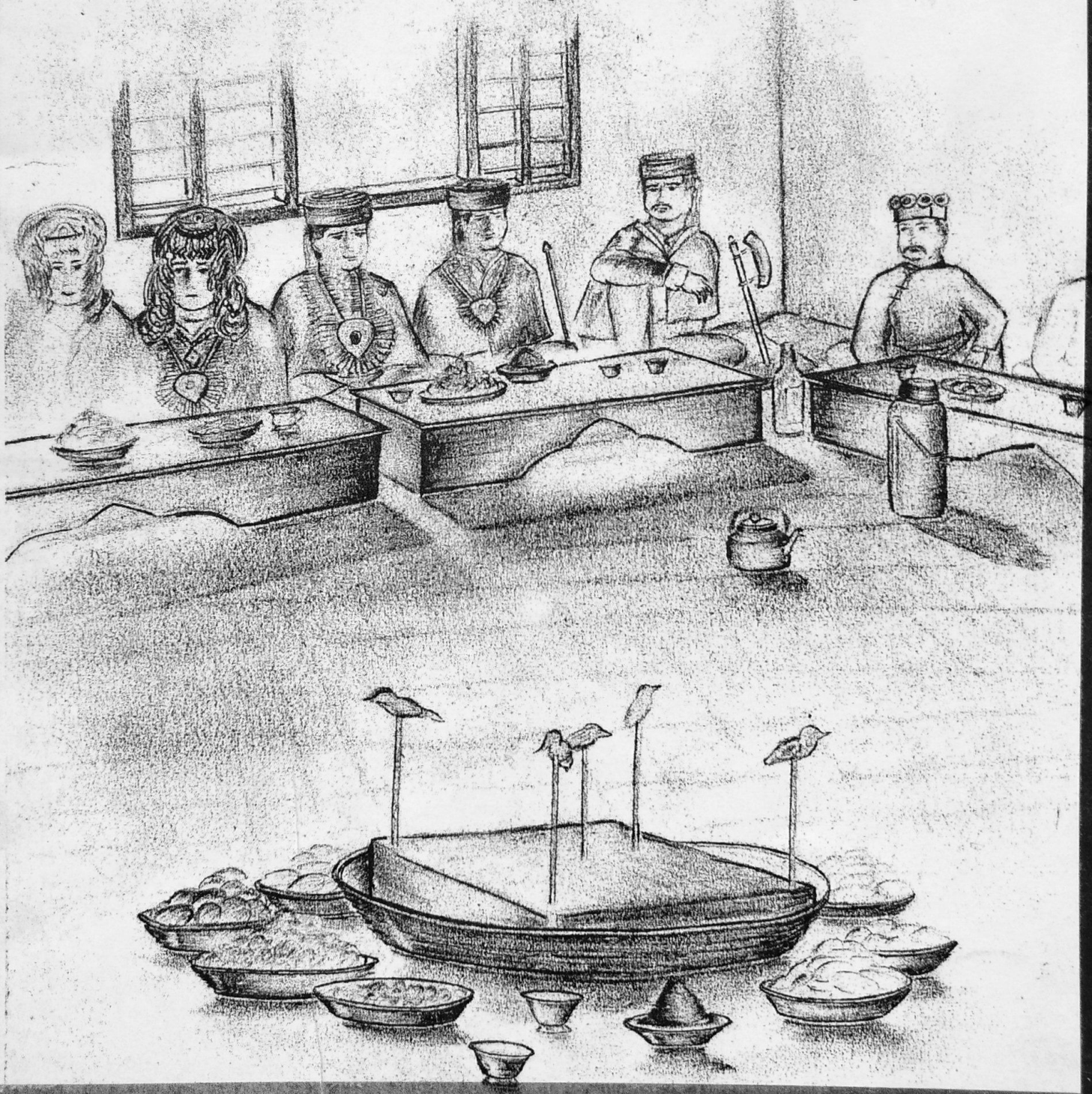

भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक के अन्तर्गत संख्या 65373/94 द्वारा पंजीकृत

संस्थापक
स्वंगला एरतोग,
लाहुल-स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु सोसाईटी (रजि०) संख्या ल स/42/93
सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21, 1860

संपादक
सुश्री डॉ० छिमे शाशनी

उप सम्पादक
बलदेव कृष्ण घरसंगी

सम्पादकीय सलाहकार
विशन दास परशीरा

प्रकाशक
सतीश कुमार लोप्पा

सम्पर्क
संपादक - चन्द्रताल
भवन बी. यू. जी. 151, वार्ड-1,
रामशिला, अखाड़ा बाज़ार, कुल्लू हि. प्र. 175101
फोन : (01902)-222518

अधिकृत एजेंट
केलंग
श्री राम लाल, राम लाल की हट्टी
(शिव मन्दिर के पीछे), अप्पर केलंग, लाहुल-स्पीति

उदयपुर
श्री शिव लाल, शिवा जनरल स्टोर,
निकट मृकुला देवी मन्दिर, उदयपुर, लाहुल-स्पीति

चन्द्रताल त्रैमासिक सहयोग राशि :
वार्षिक : एक सौ रुपये
एक प्रति : पच्चीस रुपये

पत्रिका पूर्णतः अव्यवसायिक तथा संपादन व प्रबन्धन अवैतनिक है।

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा पंकज प्रिंटर्ज घुमारवीं से टाईप सैटिंग तथा मुद्रित एवं नीरामाटी, ज़िला कुल्लू हि. प्र. से प्रकाशित।

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, उनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

आवरण
मुख पृष्ठ रेखा चित्र : अनिल कुमार

चन्द्रताल

अंक - 24

क्रम

सम्पादकीय			2
पाठकीय			3
कविता			4 - 5
	रोहतांग के पार	- शेर सिंह	4
	पहाड़ पर	- सुरेश सेन	4 - 5
	अभिव्यक्ति	- अशोक कुमार	5
	कवि का डर	- गणेश 'गनी'	5
कहानी			
	बचपन बोलने लगा है।	- डा० उरसेम लता	6 - 9
कसौटी			
	लाहुल : विज़न 2025	- बलदेव कृष्ण घरसंगी	10 - 11
लोकगाथा			
	वारे पारे पड़ासेतु थीया जीओ	- बलदेव रापा	12 - 14
क्षेत्रीय दृष्टि			
	बदलते रिवाज़ : रूप अनेक	- सतीश लोप्पा	15
जीवनी			
	मिला रेपा की जीवनी : गुरु के दर्शन	- ठिनले नमग्ज़ल एवं अजेय	16 - 19
इतिहास			
	चन्द किन्नर जातक और लाहुल स्पीति का परिवेश	- तोबदन	20 - 21
लोक परम्परा			
	फोरोग प्रेषण	- के० अंगरूप लाहुली, सतीश लोप्पा	22 - 25
देव परम्परा			
	कुलूत जनपद में नागों और अप्सराओं का वर्चस्व	- तेज राम नेगी	26 - 28
लोक साहित्य			
	पटनी मुहावरे	- विकास	29
विविध			
	बुढ़ापा अभिशाप नहीं, नव्य जीवन की तैयारी	- दिव्य - नवड. तन्ज़िन खलेपा	30 - 31
ग्रामीण विकास			
	लाहुल में पोली जल भण्डारण की सम्भावनाएं	- बलवीर सिंह यर्की	32 - 34
कला			
	बौद्ध कला : उत्पत्ति और विकास	- जसवंत कुमार शर्मा	35 - 38
कृषि			
	पाले से फसलों को नुकसान : कारण और बचाव	- डॉ० मोहन सिंह जांगड़ा	39 - 40

संपादकीय

सांस्कृतिक धरोहर किसी भी समाज की अस्मिता का परिचायक होती है। यह विरासत ही प्रेरणा पुंज बन कर समाज का मार्ग दर्शक बन, श्रेय और प्रेय को समझने की दृष्टि प्रदान करती है। मात्र संस्कृति के संरक्षक बनने का दावा करना पर्याप्त नहीं होता, अपितु उस का संवाहक बन कर उसे संरक्षित, सुरक्षित करना भी समाज का एक बहुत बड़ा दायित्व होता है। संस्कृति सदैव परिवर्तनशील रही है, समय के बदलाव के साथ सामाजिक मूल्य, नैतिक मान्यताएं आदि परिवर्तित होती रहती हैं, किन्तु इन्हीं मान्यताओं और आदर्शों में हमारी सांस्कृतिक विरासत की झलक विद्यमान रहती है। इसलिए संस्कृति की विलुप्त हो रही थाती से आने वाली पीढ़ी का परिचय कराने के लिए उसे संरक्षित, लिपिबद्ध करने की आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता।

इस अंक का विशेष लेख 'फोरोग-प्रेषण' है। यह विवाह का एक रस्म है, पटन घाटी के अधिकांश समुदायों में प्रचलित यह रस्म आज नदारद है और धीरे-धीरे विस्मृति के गोद में विलुप्त होती जा रही है। पुरानी पीढ़ी इस के वर्चस्व को समझते थे और इस रस्म की अदायगी वर-वधू दोनों के घरों में अनिवार्यत: होती थी। ये एक गेय पद हैं, जिसे विशेष ढंग से गाने के साथ सदेशवाहक को विभिन्न दिशाओं में भेजने का उपक्रम किया जाता है। इस उपक्रम का उद्देश्य शायद वर-वधू के सुखमय जीवन की कामना है ताकि विवाह-सूत्र में बंधने से पूर्व चारों दिशाओं की स्थिति, परिस्थिति की जानकारी ली जा सके और आने वाले जीवन की राह में कोई कठिनाई न आने पाये। 'वारे-पारे पड़ा सेतु थीया जीओ' घुरे में जोबरंग और फूड़ा गांव में घटित घटना का वर्णन है, प्रतिशोध की पराकाष्ठा का चित्रण है कि किस तरह मामा-भान्जों ने प्रतिशोध की आग में जल कर एक-दूसरे के वंश का नाश किया। उस युग में तंत्र विद्या के प्रचलन की ओर भी इंगित किया गया है। 'गुरु के दर्शन' में मिलारेपा की जीवनी के बहाने तांत्रिक बौद्ध दर्शन के कुछ पहलुओं को उजागर किया गया है। प्रतिशोध, हिंसा-वृत्ति और पाप की अतिशयता अन्त में मनुष्य के हृदय को उद्वेलित कर वैराग्य वृत्ति की ओर उन्मुख करता है इसे मिलारेपा और उसके गुरु के माध्यम से दर्शाया गया है। 'बचपन बोलने लगा' कहानी में पहाड़ी गांव का वातावरण, रीति रिवाज़ , 'बाहर के' कहे जाने वाली वर्ग की उपेक्षा, विवशता का सजीव चित्रांकन है। गूंगे बच्चे के माध्यम से वर्गभेद के प्रति आक्रोश और समाज में बदलाव के आने की सम्भावना की ओर इंगित किया गया है। इस कहानी में लेखकीय करूणा और संवेदना यत्र-तत्र प्रतिबिम्बित हुआ है।

इस के अतिरिक्त संस्कृति, साहित्य व विकास पर सामग्री से पूर्ण यह अंक पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। प्रबुद्ध पाठकों ने सदैव सक्रिय भागीदारी से हमारा मनोबल बढ़ाया है तथा अच्छी सामग्री जुटाने में सहायता की है और भविष्य में भी ऐसा ही कामना करते हैं। 'नव वर्ष के पावन अवसर पर पाठकों को हमारी शुभकमानाएं'।

संपादक

महोदया

चन्द्रताल जनवरी 2005 दिसम्बर का अंक मिला। काल चक्र की कैसी विडम्बना है कि पिछले अंक में प्रिय शिष्य आचार्य प्रेमसिंह के निधन का समाचार पढ़ना पढ़ा तो इस अंक में प्रिय मित्र एवं सहयोगी के० अंगरूप लाहुली जी के निधन का। ये दोनों ही व्यक्ति मेरे बहुत निकट थे। पंजाब वि० वि० में प्रेम सिंह जी को शास्त्री में पढ़ाने का अवसर मिला था। उसके बाद लाहुल की भाषाओं व संस्कृति में अनुसन्धान कार्यों में तथा मेरे लाहुल प्रवासकाल में उनका अमूल्य सहयोग मिलता रहा। वे मुझे अपने घर शांशा भी ले गये थे।

अंगरूप जी से तो मेरा 50 साल से भी अधिक समय का परिचय रहा है। जब सन् 1953 – 54 में मैं बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय में पी. एच. डी. कर रहा था तो तभी मैं उनकी तिब्बती की कक्षा में तिब्बती सीखने आया करता था और जब वे पंजाब विश्व विद्यालय में आये तो वे सहयोगी तो हो ही गए थे मेरे तिब्बती भाषा व संस्कृति के पथ प्रदर्शक भी रहे। लाहुल के व तिब्बती अनुसंधान के कार्यों में मुझे बराबर उनका सहयोग एवं सानिध्य मिलता रहा। अपनी लाहुल यात्राओं में मुझे दो बार कुल्लू में उनके घर का आतिथ्य प्राप्त करने का सौभाग्य भी मिला था। सेवानिवृत्ति के बाद भी उनसे बराबर पत्र व्यवहार चलता रहा। वे अपने विषयों के प्रकाण्ड विद्वान् तो थे ही पर उससे भी अधिक सरलता व सज्जनता के जीवन्त रूप थे। उनकी मृत्यु का समाचार पढ़कर अत्यन्त दुःख हुआ। भगवान बोधिसत्व उनकी आत्मा को शाश्वत शान्ति प्रदान करें।

चन्द्रताल में प्रकाशित अधिकतर लेख सारीय एवं पठनीय होते हैं। पत्रिका की आवृत्ति अवश्य कम हो गयी है पर लेखों का स्तर यथावत् चल रहा है यह बड़ी प्रसन्नता व बधाई की बात है। श्री शिव चन्द ठाकुर का लेख काफी ज्ञानवर्धक है पर लगता है उन्हें लाहुल की भाषाओं पर किये गये मेरे अनुसंधान कार्यों Studies in Tibete Himalayan Languages : A descriptive analysis of Pattani & tribal languages of H.P. Part I & II एवं हिमालय की विस्मय भूमि: लाहुल को देखने का अवसर नहीं मिला। अस्तु,

– प्रो० डी. डी. शर्मा, आनन्द धाम, नवाबी रोड़ भोटिया पड़ाव, हल्द्वानी – 263141 नैनीताल (उत्तरांचल)

सम्पादक महोदया,

चन्द्रताल के 23वें अंक का काफी लम्बा इन्तज़ार करना पड़ा। अब तो यूं लग रहा है जैसे पत्रिका त्रैमासिक से वार्षिक और वार्षिक से द्विवार्षिक तथा आगे – आगे कहीं पंचवर्षीय योजना की तरह पंचवर्षीय न बन जाए। पाठकों को इतना लम्बा इन्तज़ार करवाना न्यायसंगत नहीं होगा। यदि 'चन्द्रताल' साल में एक ही बार प्रकाशित हो रही है तो मेरा सम्पादक मण्डल से अनुरोध है कि पत्रिका के पृष्ठों की संख्या बढ़ाई जाए। वर्तमान 50 पृष्ठों के बजाय यदि 100 पृष्ठों की पत्रिका वर्ष में एक बार ही मिले तो भी तर्कसंगत लगता है। ताकि पाठकों को अधिक तथा स्तरीय सामग्री पढ़ने को मिले। मुझे विश्वास है कि मेरे इस सुझाव को सार्वजनिक सुझाव समझकर पत्रिका के पृष्ठों की संख्या को कम से कम दोगुना किया जाएगा।

चन्द्रताल में जो 'बधाईयां' वाला कॉलम आरम्भ किया है इसे आगे भी बनाए रखें। इससे पाठकों को नई – नई विभूतियों के बारे में जानने तथा प्रेरणा लेने का सुअवसर मिलता है। कृष्णा की कविता तथा कहानी सचमुच एक समकालीन महत्त्वपूर्ण लेखनी है जो कि इतनी छोटी उम्र में अपने आप में एक मील का पत्थर साबित करती है। हमेशा की तरह ही घरसंगी, लोप्पा, नमज्ञाल, अजेय के लेख पठनीय हैं। 'स्वास्थ्य' नाम से आरम्भ किया गया पृष्ठ भी अति महत्त्वपूर्ण है। डॉ० शाशनी ने महत्त्वपूर्ण तथा रोचक जानकारी दी है। उम्मीद है आगे भी स्वास्थ्य विशेषज्ञों को पढ़ने का मौका मिलेगा।

के अंगरूप लाहुली जैसे साहित्यकार के हमारे बीच नहीं रहने से एक भारी खालीपन आ गया है। यह क्षतिपूर्ति होना असम्भव ही है। ऐसे लीक से हटकर लिखने वालों की कमी हमेशा खलती रहेगी।

चन्द्रताल का 24वां अंक दिसम्बर में मिलेगा यही उम्मीद तथा अनुरोध करता हूँ। इससे पाठकों तथा लेखकों की रोचकता भी बनी रहेगी। चन्द्रताल के आवरण पृष्ठ को कृपया अधिक आकर्षक बनाने की कोशिश करें। इससे पत्रिका अधिक प्रेजेंटेबल बनेगी।

– गणेश भारद्वाज

महोदया

"चन्द्रताल" पत्रिका का दिसम्बर – 2005 का अंक देखने का अवसर प्राप्त हुआ। यह देख कर प्रसन्नता हुई कि पत्रिका विशेष रूप से लाहुल और लाहुल की संस्कृति पर केंद्रित है। अच्छा लगा। आप शायद "चन्द्रताल" को काफी समय से निकाल रहे हैं। मेरा दुर्भाग्य कह लीजिए, मैंने इससे पहले इसका कोई अंक नहीं देखा था। खैर!

शेर सिंह
सिंडीकेट बैंक,
सोमाजीगुड़ा, हैदराबाद

❄❄❄❄❄❄

रोहतांग के पार

फूल चटखने लगे हैं
गुलमोहर के
महक टेसू की
फैलने लगी है सर्वत्र
और हवाओं ने
बदल ली है फिर
अपनी चाल।

पारदर्शी चन्द्र-भागा
ढापने लगी होगी
अपनी छाती
टूटते हिमखण्डों
पिघले हिमजल और
अंग-संग बहती
किनारों की माटी से।

टूटने लगा होगा सन्नाटा
फिर से
रोहतांग पर मुसाफिरों के
गमबूटों, डकबेकों से
पग-पग रास्ता बनाते
पदचापों से, और
झांकने लगी होगी विपाशा भी
गुफा से बाहर
हिमखण्डों के आर-पार।
और उस पार
घर की छतों
आंगन के पेड़ों पर
का-का करते कौवे
आगाह कर रहे होंगे
परदेश से
वापस घर को लौटने वाले
घर के मुख्य और कुलदीपकों के।
उत्सुक होंगे
घर के सदस्य, परिजन
सौगातों के लिए
मन में चिंता लिए
लेकिन आस लगाए
झोली भर प्यार के
अपने लाडलों
घर के शिरदार के
दूर दराज़ से
लौट आने के इंतज़ार में।

प्रतीक्षारत होगी
गृह स्वामिनी
दिल में संजोए सपने अनेक
मुस्कराती आंखें
चाहत से भरी
मन के स्वामी के
इंतज़ार में।

-शेर सिंह

पहाड़ पर

(दोस्त अजेय के लिये)

ऐसी जगह रहते हैं हम
जहां नौकरी पेशा लोग
हज़ारों तिकड़में भिड़ाते हैं।
नहीं आने के लिये
कांप जाती है उनकी रुह
नरक से भी ज़्यादा डरते हैं
इस जगह से वे।

यहां नहीं रह पाती हैं जीवित
बहुत सी मैदानी चिड़ियां
बहुत सी वनस्पतियां नहीं उग पाती हैं यहां।
यहीं पहाड़ पर है हमारा घर
बतौर सज़ा भेजे जाने वाले
कर्मचारी सोचते हैं अक्सर
कि धरती के किसी और टुकड़े पे
नहीं बस सकते थे हम लोग क्या
जहां जीवन थोड़ा सा सहज होता
सरल होती दिनचर्या
धूप थोड़ी विनम्र

हवा में भरी रहती इतनी भर ऑक्सीजन
कि थोड़ा सा चलने पर नहीं फूलती सांस।
यहीं इन्हीं दुर्गम पहाड़ों पर
है हमारा घर
यहीं पे सजते हैं हमारे मेले
गूंजते हैं गीत
आपको नहीं समझ आते हैं हमारे गीत
हमारी लोकभाषा नहीं आती समझ
कि क्या गा रहें हैं हम
ईश्वर से क्या-क्या शिकयतें हैं हमारी
हमारे चेहरों की हंसी के पीछे बैठे
दुःख नहीं दिखते हैं आपको
नहीं सुनाई देती है
गहरी अंधेरी घाटी में गूंजती
आंसुओं से भीगी हमारी रूलाई।

जब मैदानों में घुटती है गर्मी से सांस
भारी जेब वालों का दूभर हो जाता वहां जीना
उत्सव सा रहता है उन दिनों
हमारे इन दुर्गम पहाड़ों पर
टूरिस्टों की तरह आते हैं यहां
कुछ हिम्मतवर लोग
यहां उन्हें झीलों का पानी बहुत ही निर्मल
दिखता है
बहुत सुन्दर दिखती हैं ब्यौंस की हरी पत्तियां
बहुत आकर्षक दिखते हैं
यहां के नंगे पहाड़
यहां के बौद्ध बिहार
भर देते हैं उन्हें पवित्र शांति से
सड़कों के किनारे उगी थोड़ी-थोड़ी हरी घास
मन मोह लेती है उनका।

सब कुछ उतार लेना चाहते हैं वे
अपने कैमरों में, अपनी आंखों में
अपनी आत्मा में।
उनके उतारे चित्रों में
जो अकसर सजे रहते हैं उनके कमरों में
फोटो-प्रदर्शनियों में
दिखते हैं बलाह के खिले सुन्दर फूल
याक दिखते हैं
आभूषणों में सजी पहाड़ी बालाएं दिखती हैं
नहीं दिखता है तो केवल दुःख।
सबसे कठिन मौसम में
टूटती है जब पहाड़ की देह
ग्लेशियर के नीचे दब जाता है कोई पड़ोसी गांव
लगातार कई दिनों तक गिरती हुई बर्फ में
हमारे बुर्जुग याद करते हैं ईश्वर को
ये जानते हुये भी
कभी नहीं आयेगा वह सहायता करने
इस दुर्गम पहाड़ पर।

एक दिन याक चराते हुये
चन्द्रभागा में फिसल कर
मरते-मरते बची मेरी छोटी बहिन
अस्पताल में नहीं था कोई डॉक्टर
आप अन्दाज़ लगायें
स्कूल में भी कहां रहे होंगे अध्यापक
हम रहते हैं यहां
और सिर्फ दुःख ही दुःख रहता है पहाड़ पर।

–सुरेश सेन 'निशांत'

अभिव्यक्ति

अभिव्यक्ति को आ जाने दो
सच्चाई छिड़ जाने दो,
शब्दों के तारों से
मौन को टूट जाने दो।

सबको सत्य जानने दो
हृदय के झरोखे खुल जाने दो,
रात्रि को बीत जाने दो
उषा रूपी सुन्दरी को घर आने दो।

अब बसन्त भी आने लगी है
कण-कण में रंगत आने दो,
गेंदे को खिल जाने दो
गुलाब की खुशबू को आने दो।

सत्य को दबा कर पीड़ा झेलने वाले
सत्य बता कर नम आँखों को मुस्कराने दो,
दिल की बातों को दबा कर जीने वालो
बातों को बतला कर दिल हल्का होने दो।
मंदिर से भी आवाज़ आने दो
मस्जिद से भी आवाज़ आने दो,
मठ, गोम्पा से भी आवाज़ आने दो
गुरुद्वारे से भी आवाज़ आने दो।

दूसरों को नसीहत देने वालो
पहले पाँव सम्भल जाने दो
ईमान का चोगा पहनकर चलने वालो
बेईमानी का घूंघट उतर जाने दो

अभिव्यक्ति को आ जाने दो
सच्चाई को छिड़ जाने दो
शब्दों के तारों से
मौन को टूट जाने दो।

अशोक कुमार
G.D.C. कुकुमसेरी

कवि का डर

दिल घबराता था बचपन में कवि का
और धड़कनें बढ़ जातीं,
हवा दिसम्बर के आने का
जब-जब सन्देशा ले आती।
अखरोट के पेड़ों के पत्ते
धीरे-धीरे सब पीले पड़ जाते,
और फिर बर्फ गिरने से पहले
शाख़ों से झड़ जाते।
दिसम्बर की बर्फीली हवाएं
और ठिठुरता हुआ मौसम,
कहीं इक्का-दुक्का पक्षियों की सदाएं
क्यों विरह में तड़पाता यह जाड़े का मौसम।
उस आवाज़ से तब-तब
मन में इक अजीब सी हलचल मचती,
देवदार के दरख़्तों से जब-जब
हवा टकरा के चलती।
अब धीरे-धीरे मौसम बदलने लगा
और हरी घास दिखने लगी है,
चरागाहों का बर्फ पहाड़ की ओर खिसकने लगा
और रंग-बिरंगी कलियां खिलने लगी हैं।
चरागाह की हरी घास में भेड़ें चराता
और गडरिया टीले पर बैठा है,
किसी लोकगीत की धुन पर सीटी बजाता
यूं उदास जैसे किसी से रूठा है।
वादियों के सब जंगल तो कट गए
पर्यावरण की किसे चिन्ता है,
भ्रष्टाचार और हिंसा के बस गए दरख़्त नए
अब यहां कौन गरीबों की सुनता है।
अब तो पूंजी, बाज़ार, तिजारत ने
अपने पांव खूब पसारे हैं,
मेले लगाए इन दुकानदारों ने
तमाशबीन तो गुर्बत के ग़म के मारे हैं।

–गणेश 'ग़नी'

बचपन बोलने लगा है

–उरसेम लता

सामने गांव ..... हल्की चहल-पहल का वातावरण। कोई आंगन लीप रहा है, कोई घास-फूस उठाकर घर के सामने वाला खेत साफ करने में व्यस्त है। चारों ओर व्यस्तता का माहौल। सुबह बारात जानी है, बहुत सी तैयारियां करनी है, जल्दी उठना होगा। सभी बची हुई रात को नींद के सुपुर्द करने में लग गए, परन्तु मेरी आँखों में नींद कहाँ? वर्षों पहले मेरे पिता जी नौकरी के कारण बाहर निकल आए थे, फिर धीरे-धीरे वहीं के होकर रह गए। छुट्टियों में महीने भर के लिए हम गांव जाते, धीरे-धीरे ये सिलसिला भी कम होता चला गया। आज वर्षों बाद गांव लौटना हुआ, अचरज हुआ कि इतने वर्षों बाद भी कुछ नहीं बदला। वही सब कुछ। उतने ही घर वही पगडंडियां, वही धार, यूं लगता था मानो एक पत्थर भी अपने स्थान से न हिला हो और इन सभी के साथ जो नहीं बदला था तो वह थी गांव की वही आत्मीयता, मेहमाननवाज़ी, सहजता व खुला व्यवहार । बीस वर्षों का लम्बा अन्तराल मानो उन क्षणों में सिमट आया था।

सुबह बारात ठीक समय पर निकल पड़ी। दिन भर शान्ति सी बनी रही। बारात जाने के बाद कुछ ही लोग पीछे रह गये थे।

दोपहर का समय था, गांव के लोग जागरे का खाना खाने पहुंचने लगे। सामने की पाठशाला में आधी छुट्टी की घंटी बजी। चीखते-चिल्लाते बच्चे तेज़ी से भागते हुए चले आ रहे थे। किसी के मुख पर स्याही लगी थी, किसी के कपड़ों पर। टाटें बिछाई जा रही थी। बच्चे थे कि सब्र की हद को तोड़ देना चाह रहे थे। एक-दूसरे को धकेल कर बैठने के लिए प्रतिस्पर्धा करने लगे। एक समूह तेज़ी से आकर बैठ गया, उसी बड़े समूह में कुछ बच्चे पीछे रोक लिए गए। बहुत सी जगह खाली होने के बावजूद कुछ दूरी पर उनके लिए एक अलग स्थान बना दिया गया। कुछ टूट कर बिखर गया कहीं भीतर।

यह क्या? मैंने अकस्मात सामने बैठे अपने चाचा जी से पूछा।

बड़े ही सहज भाव से उन्होंने उत्तर दिया..... ये 'बाहर के हैं' कल शाम से गांव के जिस न बदले वातावरण पर मन प्रसन्न हो रहा था वह अचानक टूट कर बिखर गया।

'ये भी नहीं बदला?' ..... मैंने मन ही मन सोचा। इससे पहले कि मैं उनसे इस अमानवीय व्यवहार के बारे में प्रश्न करती, वे उठकर जा चुके थे। अब तक जो मन यहाँ आने के बाद संतोष का अनुभव कर रहा था वही मन गहरी वितृष्णा से भर उठा । मैंने देखा, बच्चों का शोर बढ़ता जा रहा था, दोनों समूह बड़े ही सहज भाव से हंसते बतियाते खाना खा रहे थे। दूर अलग बैठे भोले बच्चों की मौन स्वीकृति देख मन द्रवित हो उठा। वर्ण व्यवस्था का इतना प्रभाव! कोई विरोध, कोई कड़वाहट, कोई तर्क नहीं। सभी बच्चे घंटी बजने के डर से जल्द खाने में लगे थे। तभी मैनें देखा एक बालक, सात-आठ वर्ष की उम्र होगी, गौरा रंग गाम्भीर्य मिश्रित उदास आँखें जो उन दोनों समूहों से अलग खेत की मेड़ पर, हाथ में छड़ी लिए बैठा था। मुझे अपनी ओर देखते हुए देख उसने मेरी मुस्कान का हल्की दबी सी

मुस्कान से उत्तर दिया फिर चेहरा झुकाकर छड़ी से मिट्टी के ढेले पर चोट करने लगा।

मैंने आवाज़ देकर पूछा- तुम खाना नहीं खाओगे? मेरे प्रश्न पर अस्वीकृति से उसने सिर हिला दिया..... क्यों? क्यों नहीं खाओगे? मेरा प्रश्न हवा में टंगा रह गया। स्कूल की घंटी बज चुकी थी, खाना खाकर उठे दोनों समूह, कब एक हो गए और कब वह बालक उसी भीड़ का हिस्सा बन गया, पता ही नहीं चला।

बारात के लौटने का समय आ गया था..... गाँव रोशनी से भर उठा था, रात का समय..... चारों ओर जिज्ञासा, इन्तज़ार व प्रसन्नता का वातावरण..... बारात द्वार तक पहुँच चुकी थी, इसी के साथ पहुँची थी वहाँ की बातें । दुल्हन के डोली से उतरने से पहले उसके स्वभाव की, उसकी सूरत की अलग-अलग प्रतिक्रियाएं कानों में पड़ने लगी । बहुत से दहेज को साथ लाने की फुसफुसाहट के बीच चाचा-चाची के सामने एक समस्या आ खड़ी हुई। समस्या थी..... इतना सारा सामान सड़क से चार-पाँच किलो मीटर की सीधी चढ़ाई से इतनी दूर इस गाँव तक कैसे पहुँचाया जाये। रात इसी चिन्ता में गुज़र गई।

अगली सुबह..... थके बाराती सोए पड़े थे, शराबी रात में बगीचों, खेतों, घर के पिछवाड़ों में पीते-पीते वहीं लुढ़क गए थे, इधर-उधर बेसुध पड़े थे। खाली बोतलें, पत्तलों में पड़ा भोजन गाँव भर के कुत्तों का ग्रास बन रहा था। इधर रसोई में बोटी बड़े से पतीले में पानी डाल कर आग जलाने के लिए लकड़ियां चुल्हे में डाल रहा था, दूसरी ओर चाय का पानी उबल रहा था। गांव की कुछ औरतें आंगन झाड़-बुहार रही थी। हम उठकर सुबह का आनन्द लेने खेतों से होते हुए उसी धार पर पहुंच गए, जहां चार पाँच किलोमीटर की उतराई से नीचे नदी के दूसरे छोर पर जाती एकमात्र कोलतार की सड़क पर कभी-कभार आती बसों व भूले-भटके किसी निजी वाहन को देखने आवाज़ सुनते ही हम धार तक दौड़े चले आते थे।

धार के नीचे 5-6 कि० मीटर की सीधी उतराई। पगडण्डी से होकर नदी पार करने वाले झूले को पार कर । कि० मी० की चढ़ाई के बाद उस एकमात्र सड़क से जुड़ती थी। उस पगडण्डी के एक ओर गाँव की गाड़ (नाला) बहती थी और दूसरी ओर धान के हरे-भरे सीढ़ीनुमा रोपे थे और रोपों के बीच दूर-दूर छोटे-छोटे स्लेट की छतों के मकान। सामने बहती नदी पर एक छोटी सी पुलिया थी जिसे गाँव वाले स्वयं बनाते थे, बरसात के दिनों में अक्सर पुलिया नदी में बह जाती थी और फिर दुबारा पुलिया का निर्माण जिजीविषा के संघर्ष को दर्शाता था। सड़क पार करके पगडण्डी से होती हुई मेरी नज़रें लौट आई वापस उसी धार पर जहाँ मैं खड़ी थी। सदियों से तीव्र जिजीविषा के संघर्ष में संघर्षरत किसानों की, भूमिहीनों की अन्तहीन व्यथा की साक्षी सड़क को गाँव से जोड़ती यह पगडण्डी अजब सी अनुभूति का भाव बार-बार जगाए जाती थी।

चलो भई चाय नहीं पीनी है क्या? दूर से बुआ का स्वर सुनाई दिया। रसोई से कुछ दूर रात में देर तक नाचते रहे थे लोग, वहीं एक किनारे बाजे वालों के लिए आग जलाने के लिए एक स्थान बना दिया गया था उसी जगह दो-तीन ठेले जल रहे थे, रातभर लकड़ियां जलते रहने से वहां राख की बड़ी सी ढेर बन गई थी। उसी के चारों ओर चाय पीने के लिए बुआ जी, ताया, चाचा जी, चचेरे भाई-बहन सब बैठे थे। चाय आ गई। चाय पीने लगे।

अभी तक नईं आया लुदरु? ताया जी का स्वर था। आजकल नईं रहा बोह टाईम कि एक आवाज़ दो तो नंगे पैर दौड़ते चले आते थे, मजाल थी, कि जरा भी देर करते। यह दूसरा स्वर गाँव के किसी दूसरे बुज़ुर्ग का था।

अभी बातें हो रही थी कि लुदरु सामने से आता दिखाई दिया। 40 से 45 वर्ष की उम्र रही होगी शायद, खिचड़ी बाल, चेहरे पर उम्र के साथ-साथ कष्टों व

विवशताओं के चिन्ह साफ दिखाई देते थे। लुदरु के पीछे-पीछे एक छोटी सी आकृति उसकी कमीज़ को पकड़े सटकर चल रही थी, पास आकर देखा यह आकृति उसी छोटे बालक की थी जिसे कल देखा था।

आ गया लुदरु? कब से बैठे-बैठे देख रहे थे तेरे को। पास आते ही लुदरु ने झुकते हुए सलाम की मुद्रा में हाथ उठाकर सभी को अभिवादन किया और पास ही ज़मीन पर बैठ गया। बालक अब भी चुपचाप बाप से सटा खड़ा था।

बझिया, क्यों बुलाया था? कुछ जरुरी काम है?

हाँ भई लुदरु..... नई लाड़ी बड़ा भारी दहेज लाई है। रात भर नदी के उस ओर पड़ा रहा, आज ऊपर लाना है, इसी करके बुलाया था तेरे को मैंने।

जी बझिया, सामान कितना कर होगा जी, लुदरु ने पूछा। सामान तो क्या होना, लकड़ काठ है, तेरे लिए क्या मुश्किल है-ताया जी का स्वर था।

देख, एक सोफा सैट, डवलवैड, डाइनिंगटेबल, ड्रैसिंग टेबल, टेलिविजन, अलमारी और दस-बारह ट्रंक ही है।

इतना समान? ..... लुदरु ने चिन्ता भरे शब्दों में पूछा। हाँ भई बड़े पैसे वाले लोग हैं..... ताया जी ने गर्व से दृष्टि दूसरों पर दौड़ाते हुए उत्तर दिया।

जी, बोह तो ठीक है पर इतने सामान में बड़ा टाईम लग जाणा जी, और फिर इतनी चढ़ाई, ऊपर से गर्मी के दिन। .....लुदरु ने शंका व्यक्त की।

'तभी तो तेरे को बुलाया, नईं ता अपने आप नी ले आणा था। बड़ी ही दयनीय दृष्टि से लुदरु दोनों हाथ जोड़कर बोला, पैसा कितना देंगे बझिया? पच्चीस रुपये । 25 शब्द पर जोर डालते हुए उन्होंने उत्तर दिया। मैं अवाक्। मैंने चाचा जी की ओर देखा, मुझे अभी-अभी इस वाक्य को सुनकर अपने कानों पर भरोसा नहीं आया। मैंने सरसरी दृष्टि अन्य लोगों के साथ-साथ लुदरु व बालक पर भी डाली, बालक के चेहरे पर क्षोभ की रेखाएं झलक पड़ी थी जबकि अन्य सभी चेहरे बिल्कुल सहज थे मानों कुछ हुआ ही न हो। बालक ने तनिक रोष भरी नजरें उठाकर बाप की ओर देखा..... थोड़ी सी आनाकानी के बाद अत्यन्त करुण व दयनीय भावों के साथ लुदरु ने एक दृष्टि बालक पर डाली और राज़ी हो गया। इतना सामान ..... और पच्चीस रुपये चाचा जी....., परन्तु..... मेरा वाक्य अधूरा ही रह गया, मुझे चुप रहने का इशारा कर चाचा लुदरु को हिदायतें देने लगे....

'देख लुदरु कीमती सामान है, अगर कोई चीज़ें टूटी-भजी ता देख तेरे पैसे नीं दूंगा हाँ।'

लुदरु के जाते ही, मैंने चाचा जी से पूछा..... चाचा जी..... यह सब क्या है? यह ठीक नहीं ..... बिल्कुल ठीक नहीं है।

परन्तु हैरानी मुझे इस बात की है कि लुदरु ने स्वीकृति क्यों दी, विरोध क्यों नहीं किया?

अरे बेटा, विरोध करके जाना कहाँ? इसी ग्रां में रैहणा होगा न, रोज कितने काम पड़ने हमारे से इनको। लापरवाही से चाचा जी ने उत्तर दिया।

इतना शोषण, इतनी निर्दयता, इतनी कठोरता ..... .और .....और इन सबके साथ लुदरु की ऐसी विवशता।

दोपहर तक सामान लाना तय हुआ इधर शादी की चहल-पहल बढ़ने लगी । रीति रिवाज़, परम्परायें सभी अपने-अपने नियत समय में शुरु होकर बीतने लगे मेरा ध्यान क्षण भर के लिए भी लुदरु से न हट पाया। धाम शुरु हुई..... फिर से टाटें, दरियां बिछाई जाने लगी, फिर से अलग-अलग स्थान बनाए जाने लगे। लोग आकर अपनी-अपनी हैसियत जानकर यंत्रवत अपने-अपने स्थान पर बैठना शुरु हुए।

स्कूल की घंटी फिर से बजी-एक बार फिर बच्चों का सैलाब उमड़ आया..... फिर स्थान पाने हेतु वही प्रतिस्पर्द्धा

बच्चों में होने लगी । मैं यह सब देख रही थी, मन यहां उदास सा होने लगा। यहां फोन की सुविधा भी नहीं थी, गांव के डाकघर में एक फोन था, फोन करने की सोचकर मैं घर से निकली, डाकघर दो-तीन खेतों को पार कर स्कूल के साथ वाली इमारत में था। सुबह की घटना के बारे में सोचते-सोचते चल रही थी..... अचानक मैंने देखा वही बालक अपना बस्ता गोद में लिए एक पेड़ के तने से पीठ टिकाये शून्य में कहीं खोया सा था, वहीं पास ही एक औरत घास काट रही थी और बालक से कुछ कह रही थी। उत्सुकता वश मैंने बालक से प्रश्न किया-बेटा क्या नाम है? धाम नहीं खानी है क्या? .....परन्तु बालक चुप। मेरा प्रश्न अनुत्तरित ही रहा। जब मैंने फिर से अपने प्रश्न को दोहराया तो वह औरत बोली..... किससे बातें कर रहे हो जी?..... ये बोल नीं सकता..... जन्म से गूंगा है।..... अपणी ही किस्म का है जी, कहीं आता जाता नीं, किसी ब्याह शादी में कभी खाने नीं जाता पर पढ़ने में बड़ा लाइक है जी, या तो पढ़ता रहता है या अकेला बैठा सोचता रहता है जी, किसी से हिलता-मिलता नीं है जी।

यह सुनकर मेरी जिज्ञासा उत्तरोत्तर बढ़ती गई मैंने जिज्ञासा वश फिर प्रश्न किया-क्यों बेटा ..... तुम कहीं भी क्यों आते-जाते नहीं हों? बालक ने एक कठोर दृढ़ दृष्टि से मुझे देखा, उसके चेहरे पर तीव्रता से कई भाव उभरने लगे, उसने तेज़ी से बस्ते से स्लेट निकाली और लिखा.....

—

'मास्टर जी कहते हैं ..... हम सब एक समान हैं किताब में भी यही लिखा है, हम सब बराबर हैं..... तो हमें आप अलग क्यों बिठाते हैं?'

पढ़कर, उस वेदना व टीस को महसूस कर मैं सन्न रह गई, साथ ही गहरे संतोष की अनुभूति भी हुई। अनायास वह उठा।

आँखों में पीड़ा, आक्रोश व रोष के भावों को लिए अस्पष्ट शब्दों में हाथ हिलाता हुआ कुछ कहने का प्रयत्न कर रहा था एकाएक वह दौड़ने लगा उसी धार की ओर जहां सैकड़ों क्षण हमारी उपस्थिति के साक्षी रहे थे, भागता-भागता वह उस धार की छोर पर खड़ा हो गया और हांफते-हांफते मुझे अपनी ओर आने का इशारा करने लगा। नन्हा सा बालक हांफ रहा था, चेहरे पर अन्तहीन पीड़ा व विवशता। उंगली का इशारा करके उसने मुझें कुछ दिखाने का प्रयत्न किया। मैंने देखा दूर..... नीचे घाटी में अपने शरीर से दोगुना भार ढोता लुदरु धीरे-धीरे चढ़ाई चढ़ता चला आ रहा था,

उन पच्चीस रुपयों की एबज़ में .....कीमती सामान के टूट जाने के भय के बीच भार ढोता लुदरु अपनी विवशता को ढोता चला आ रहा था धीरे-धीरे।

ऊपर आकाश में सूर्य तेज़ी से चमक रहा था। मेरा मन रो उठा, अचानक बालक ने मेरा हाथ छोड़ा, तीव्रता से स्लेट निकाल लिखने लगा..... लिखा था..... 'मैं मास्टर जी से पूछूंगा....' क्या मेरा बापू और मैं आप सबके बराबर हैं। एक झटके से बालक उठा...स्लेट छीनकर बालक दौड़ पड़ा स्कूल की ओर..... मैं वहीं धार पर खड़ी थी। बालक बदहबास सा दौड़ता चला जा रहा था मास्टर जी की ओर। ..... दूर नीचे पगडण्डी की सीधी चढ़ाई पर लुदरु चढ़ रहा था धीरे-धीरे । ये वही धार थी जिस पर चढ़ने वाला राहगीर बगैर बोझ के भी चढ़ते-चढ़ते अपनी धड़कन स्वयं सुन सकता था और यहां पहुंच कर धड़कन के सामान्य होने तक इन्तज़ार करता था।

दूर आकाश में सूर्य अब भी अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर रहा था लेकिन एक छोटा सा बादल का टुकड़ा जाने कहां से आ गया और धीरे-धीरे सूर्य उसमें छिपने लगा था।

लाहुलः विज़न 2025

कोई भी राष्ट्र , प्रदेश, इलाका जब तक अपना एक लक्ष्य तय नहीं करता, वह कभी भी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक व सांस्कृतिक विकास को आत्मसात नहीं कर सकता। यह भी सच है कि किसी भी "विज़न" की प्रासंगिकता आधी से एक शताब्दी तक ही रहती है। इस प्रकार समय-समय पर यह आवश्यक हो जाता है कि राष्ट्रीय, प्रादेशिक व किसी विशेष भौगोलिक स्तर पर उस जगह के हिसाब से एक विज़न का खाका तैयार किया जाए जो उस स्थान के लिए उचित हो। लाहुल विज़न 1947-2007 "लाहौल पीपल्ज़ एसोसिएशन" द्वारा रखा गया था। इस एसोसिएशन का अगर आप ऐजण्डा पढ़ेंगे तो पाएँगे कि आज लाहुल विकास के जिस स्तर पर पहुँचा है वह उसी विज़न का ही नतीजा था जिसके कर्णधार स्व० ठाकुर देवी सिंह और ठाकुर शिव चन्द रहे हैं।

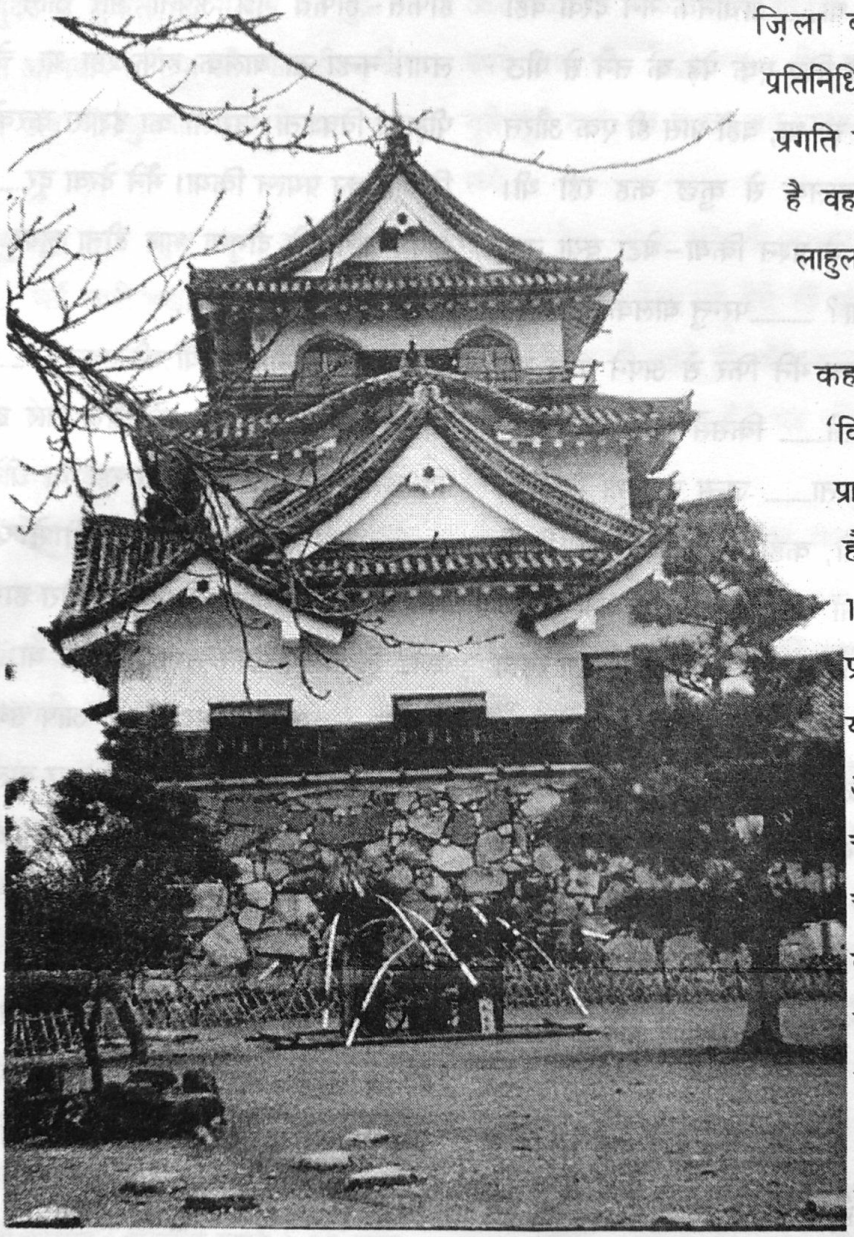

यह उनका विज़न था कि भौगोलिक रूप से दुर्गम इलाके को आरक्षण मिले, रोहतांग पर टनल निकले, सहकारिता आन्दोलन से कृषि का विकास हो, लाहुल एवं स्पीति एक ज़िला बने ताकि वे अपना प्रतिनिधि चुन सकें। आज लाहुल प्रगति के जिस स्तर पर पहुँचा है वह एक मिसाल है। फिर लाहुल "विज़न 2025" क्यों? जैसा कि पहले ही कहा गया है कि किसी भी 'विज़न' का काल उसकी प्रासंगिकता पर निर्भर करता है। आज "विज़न 1947-2007" अपनी प्रासंगिकता खो चुकी है या यह कहिए कि वह अपना लक्ष्य प्राप्त कर चुकी है और आज नई चुनौतियाँ हमारे सामने मुँह बाय खड़ी हैं जिससे निपटने के लिए हमें फिर एक विज़न की आवश्यकता महसूस हो रही है। "लाहुल विज़न 2025" इसी सोच को लेकर एक शुरुआती प्रयास मात्र है। यहां पर कुछ उन कार्यों का उल्लेख किया जाएगा जोकि आने वाले समय के हिसाब से प्रासंगिक व जिससे हम विकास की अवधारणा को आत्मसात कर सकें।

सामाजिक :

यह तय है कि समय के साथ समाज में परिवर्तन होता है और यह सामान्य प्रक्रिया है लेकिन, सामाजिक मूल्यों की कीमत पर नहीं। जैसे कि पुरूषों व महिलाओं का पहनावा तो बदल सकता है लेकिन बड़े बुजुर्गों के प्रति "यशा" , स्त्रियों के प्रति लोक लाज की अहमियत, जौड़् तो दें पर "दहेज प्रथा" न अपनाए, बच्चों को हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेंच जो चाहे सिखाएं लेकिन अपनी मातृ भाषा की कीमत पर नहीं। तेहरवीं तो अपनाए पर परंपरानुसार एक साल का "शौक" मृतक के प्रति आदर का प्रतीक है। एकाकी परिवार समय ने हम पर थोपा है लेकिन संयुक्त परिवार के नियमों का पालन हो। ऐसे कितने सामाजिक मूल्य हैं जिन्हें न छोड़ कर आधुनिक सामाजिक परिवेश को अपनाया जा सकता है।

आर्थिक : कृषि :

क) नकदी फसलों के आगमन और व्यक्तिगत उद्यम के बाद भी सहकारिता आन्दोलन लाहुल के लिए आज भी प्रासंगिक है। इस आन्दोलन में गिरावट व्यवस्था की कमज़ोरी के कारण है। आज भी लाहुल के 91 प्रतिशत कृषक सुदृढ़ एल. पी. एस. व हॉप्स सोसाईटी की इच्छा रखते हैं। इस आन्दोलन को एक नए विज़न की आवश्यकता है और यह भार अब नई युवा पीढ़ी को ही उठाना पड़ेगा।

ख) इसके अतिरिक्त आर्गेनिक फेर्मिंग (जैविक खेती) को अपनाने की आवश्यकता है। लाहुल भौगोलिक रूप से चारों तरफ से संरक्षित क्षेत्र है ज़हाँ पर जैविक खेती, पॉली हाऊस खेती आदि वर्तमान व्यवस्थित खुदरा व्यापार को देखते हुए बहुत ही लाभप्रद रहेगी। इसके अपनाने से प्रति व्यक्ति आमदनी में 15% से 25% तक बढ़ोतरी हो सकती है।

उद्योग :

क) जल विद्युत् परियोजनाएं अगर सहकारिता स्तर पर लगाई जाएं तो लाहुलियों को प्रति व्यक्ति आमदनी में 20% बढ़ोतरी हो सकती है।

ख) डेयरी उत्पादन व प्रसंस्करण एक और उद्योग है जिससे हर लाहुली परिवार को लाभ मिल सकता है।

ग) पर्यटन लाहुल में तभी फले-फूलेगा अगर हम अपनी संस्कृति, वास्तुकला, जैविक खेती और पर्यटन की बेहतर सुविधा का निर्माण करें और पर्यटन स्थानों की पवित्रता व निर्मलता बनाए रखेंगे।

यहाँ पर व्यक्तिगत उद्यम पर प्रकाश नहीं डाला गया है क्योंकि, उपरोक्त विषयों को उसकी बड़े स्तर पर उपयोगिता के आधार पर लिया गया है। हम विज़न को पूरे घाटी से जोड़ रहे हैं जिनके अपनाने से पूरी जनसंख्या को लाभ पहुँच सके। इसके अतिरिक्त सरकारी नौकरियों में कमी के कारण नई पीढ़ी को अपनी योग्यता बढ़ानी पड़ेगी ताकि वह निजी क्षेत्र की नौकरी की चुनौतियों का मुकाबला कर सकें। साथ ही युवा पीढ़ी को निजी उद्यमों की तरफ जाना पड़ेगा जिससे वह अपने परिवार, क्षेत्र व राष्ट्र के लिए सार्थक योगदान देकर अपने निजी जीवन को उत्कृष्ट बना सकें। यह उस विज़न 2025 की बुनियादी सोच-मात्र है। इस पर आगे कार्यवाही हो यह हर लाहुली की सोच पर निर्भर करता है। लेकिन, इस विज़न पर कार्य करने का समय अभी और इसी वक्त है क्योंकि, समय किसी का इन्तज़ार नहीं करता है। अगर यह समय हमने खो दिया तो आने वाला वक्त आपको कभी नहीं बख्शेगा।

-बलदेव कृष्ण घरसंगी

वारे-पारे पड़ासेतु थीया जीओ

यह पंक्ति पटनी लोक गीत घुरे की है। सहणाचि शचातोर (स्याने सुनाते हैं) - चन्द्रभागा नदी योबरङ और फुड़ङ के मध्य एक संकरे मार्ग से बहती थी। यह मार्ग इतना संकरा था कि यहाँ पटसेतु (पत्थर का पुल) था। फुड़ङ कोहड़ा परिवार के मुखिया को हाकिम के अधिकार प्राप्त थे। पिति (स्पिती) के लामे धार्मिक कार्य एवं पूजा पाठ के लिए ओथङ गोम्पा में नियुक्त थे। गोम्पा में गोवध किये जाने से अप्रसन्न हाकिम ने इन्हें गोम्पा से निष्कासित कर इनके स्थान जंस्वर करशा गोम्पा के लामे नियुक्त कर दिए।

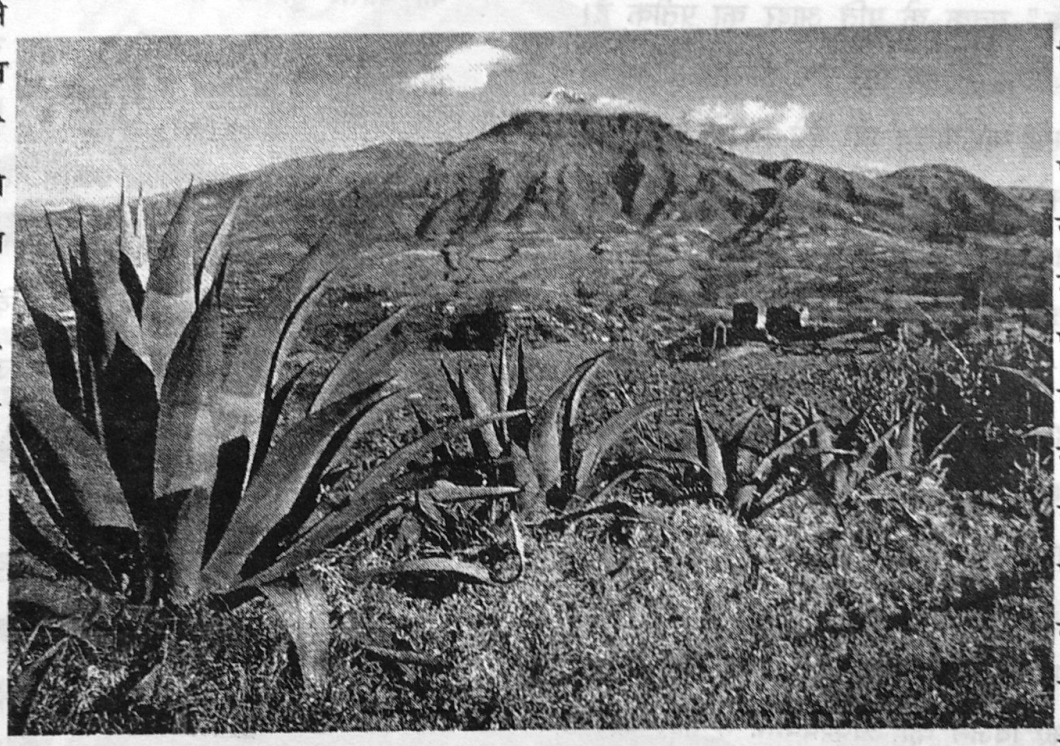

पिति के लामे हाकिम से क्रुद्ध हुए। उन्होंने तान्त्रिक बल से ओथङ गोम्पा को भस्म करने का प्रयास किया। गोम्पा के षुङमा की शक्ति से परास्त यह तान्त्रिक शक्ति ओथङ से परे योम्बण (जूंढा वन) में गिरी। इस स्थान की मिट्टी तक जल गई। यह स्थान आज भी लाल दिखाई देता है। इन लामों ने दूसरा प्रयास फुड़ङ गाँव को बहा देने का किया। तान्त्रिक बल से शिगरी हिमानी का बहुत बड़ा भाग गिरा कर चन्द्र नदी का प्रवाह रोक दिया गया। यहाँ एक झील बन गई। झील में भारी मात्रा में पानी जमा होने पर इसे एक साथ बहा दिया गया। यह घटना लाहुल में पितिउ हढ़ नाम से सुनाई जाती है। A.F.P. Harcourt लिखते हैं कि सुना जाता है कि यह घटना सन् 1836 की है। (The Himalayan District of Koolo Lahaul & Spiti PP6 Vikass Publising House Delhi-7) पिति लामो का यह प्रयास भी असफल रहा। परन्तु इस हढ़ से चन्द्र भागा नदी का संकरा मार्ग चौड़ा बन गया और पटसेतु का निशान तक मिट गया।

आइए अब घुरे पर लौटते हैं। सहणाचि शचातोर - फुड़ङ गाँव की कन्या मुरोलि योबरड. ब्याही गई थी। मुरोलि परिवार की बकरी पटसेतु हो कर गई और फुड़ड. के खेत चरने लगी। खेत मुरोलि के मायके का था। खेत मालिकों ने बकरी मार दी। इस पर विवाद हुआ। पूरी कहानी घुरे में कही गई है-

वारे-पारे ओ पड़ासेतु थीया जीओ
मांई मुरोलि पन्जा पुतरु जामी जीओ

आर-पार आने जाने के लिये पटसेतु था।

मांई मुरोलि के पाँच पुत्र जन्मे।

परलि सेरी ए चिणिकोंऊणि बाहाया जीओ
करड़ि बकरी धाना चूड़ी खाया जीओ

करड़ि बकरी मारी चुकाई जीओ

परले सेरी में चिणिकोऊंणि बीजा गया

करड़ि बकरी ने धना चूड़ी खाया

करड़ि बकरी मारी गई।

मामा भणिंजा ए झागुड़ा कीती जीओ

एकी चुड़ि तोंऊ ए साता चूड़ि देऊंला जीओ

एकी बकरी तोऊं साता बकरी देऊंला जीओ

मामा भान्जे झगड़ने लगे। भान्जे बोले

एक चुड़ि (बाली) के सात चुड़ि देंगे। मामे

बोले एक बकरी की सात बकरी देंगे।

विवाद बढ़ता गया और.....................

मामा भणिंजा ए बड़ी झागुड़ा कीती जीओ

सामो-पामो ए अड़े आगु मारी जीओ

डोगो-मोगो ए शुरतला गोटे मारी जीओ

मामा भान्जों ने भारी झगड़ा किया।

सामो-पामों नदी किनारे मारे गए

डोगो-मोगो शुरतल गोट में मारे गए।

कन्ना पामी किल्डू हेठा छीपा जीओ

पामी रताना ए परुदेसा गेई जीओ

छोटा पामी किल्टे के नीचे छिप कर बचा और

परदेश चला गया।

बाराह बरुशे ओ गुरु सेपना कीती जीओ

गुरु सेइबे ओ पूछुणे लागी जीओ

बोलो चेला ए क्या ए मन्तरा लोड़ी जीओ

बारह वर्ष गुरु की सेवा की। गुरुदेव पूछने लगे

ए चेला। तुम्हें क्या मन्त्र (शिक्षा) चाहिए।

लोड़ी गुरु ए पाणि मन्तरा लोड़ी जीओ

लोड़ी गुरु ए अग्ना मन्तरा लोड़ी जीओ।

गुरु देव! मुझे पानी और

अग्नि मन्त्र चाहिए।

बूरी चेला ए पाणि मन्तरा बूरी जीओ

बूरी चेला ए अग्ना मन्तरा बूरी जीओ

पाणि मन्तारेओ घरे वारा शोधेला जीओ

अग्ना मन्तारे घरे वारा फुकेला जीओ

ए चेला! पानी और अग्नि मन्त्र बुरे हैं। पानी

घर-बार बहा लेगा और अग्नि घर-बार फूंक

देगी।

(पामी प्रतिशोध की आग में जल रहा था। अतः

हठ किया..)

लोड़ी गुरु ए एयो मन्तरा लोड़ी जीओ

गुरु सेइबे एयो मन्तरा दीती जीओ

चेला पामी शूरा ना पूरा जीओ

ए गुरु महाराज। मुझे तो यही मन्त्र

चाहिए। गुरु ने यही मन्त्र दिये

चेला पामी इन मन्त्रों में पारंगत हुआ।

पामी रताना ए घरे जोगू फेरी जीओ

पामी रताना ए मामे रि घारे जीओ

पामी रतन वापस आकर मामों के घर गया।

मामा मामी ए पूछूणे लागी जीओ

सिद्धा जोगी ए कुणुं मुलुके आए जीओ

मांई-मांई पुरुवा मुलुके आए जीओ

मामा-मामी पूछते हैं कि ए सिद्ध जोगी!

कौन मुल्क से आए हो? पामी बोला

पूरब से आया हूँ।

जोगी न बोले मेणि पामी रे न्हवारे जीओ

पामी सेइते ओ गुरु भाई थीया जीओ

पामी मूएं ओ साता बरुशा भूए जीओ

पामी रे गोदड़ी मोएं जो बखशाई जीओ

तुम जोगी नहीं, बल्कि हमारा पामी लगते हो।

पामी के साथ हम गुरु भाई थे। पामी मरे सात वर्ष

हुए हैं। उसके वस्त्र मुझे दिए गए हैं।

सिद्धा जोगी ए भले खाबुरा आणिं जीओ

ऊपरी पौड़ीए चुली चौका दीती जीओ
सिद्धा जोगी शदी कारी आणि जीओ

ए सिद्ध जोगी! भली खबर लाये हो।
ऊपरले कमरे में चुल्हा चौका लगा कर
जोगी को घर बुला लाए

मामा-मामी ए बाधाया लागी जीओ
मामा मामी ए नाचूणे लागी जीओ

मामा-मामी बधाईयों में मग्न हो नाचने लगे।

घूमी नौकुराणि पामी पहिचाणि जीओ
घूमी नौकुराणि मारी चुकाई जीओ
मामा-मामी ए पूछूणे लागी जीओ
सिद्धा जोगी क्या ए गड़ गड़ भूया जीओ
मांई मांई कुन्दुडू लुढ़काई जीओ

घूमी नौकरानी ने पामी को पहचान लिया।
घूमी मारी गई। उसके तड़पने से गड़ गड़ की
आवाज़ हुई। मामा-मामी पूछने लगे ए जोगी।
यह क्या हो रहा है? पामी बोला मांई! ज़रा
घड़ा लुढ़क गया है।

पामी रताना ए नाचूणे गेई जीओ
हाथा तलुवारा नाचूणे लागी जीओ
एके फैरे साता मामा मारी जीओ
दूजे फेरे साता मामी मारी जीओ

पामी रतन हाथ में तलवार लिये नाचने
लगा। एक वार से सात मामे मारा। दूसरे वार से
सात मामी मारा।

खूना निगूती ए ओबुरी भर आई जीओ
पामी रताना ए बता नाही मेड़ि जीओ
हाथा जोड़ी ए अरुज़ा ना कीती जीओ

खून से कमरा भर गया। पामी को बाहर आने का
मार्ग न मिला। दोनों हाथ जोड़े प्रार्थना की कि.....

साता मामी ताएं साता प्रेनाड़ा रखेला जीओ
साता मामा ताएं साता नोऊड़ा रखेला जीओ

सात मामी के लिए सात पनिहार तथा सात मामों के
लिये सात नोऊड़ (छोटा तालाब) रखूंगा।

पामी रताना ए घरे जोगू फेरी जीओ
मांई मुरोलि नोऊड़ा-प्रेनाड़े आसे जीओ
मांई मुरोलि पूछूणे लागी जीओ

पामी रतन घर लौटा। मांई मुरोलि को नोऊड़ प्रेनाड़ा
पर पाया। मां मुरोलि पूछती है.....

सिद्धा जोगी ए कुणुं मुलुके आए जीओ
मांई-मांई पुरुवा मुलुके आए जीओ
तेरी तलुवारा खूने री छापा जीओ
आदू बाते चकोरु सु मारी जीओ

ए सिद्ध जोगी! कौन मुल्क से आए हो? मांई पूरब
से आया हूँ। अरे! तेरी तलवार पर खून के निशान
क्यों हैं? आते हुए रास्ते में चकोर मारा था।

जोगी न बोल ए मेणि पामी, बोले जीओ
चकोरु न बोल ए मेणि प्यौकी चूकी जीओ
हाथा जोड़ी ए मांई रे चरुणे जीओ।

जोगी न बोल तुम मेरे पामी हो। चकोर न बोल मेरा
मायका का अन्त हुआ है। पश्चाताप के आंसू
बहाते,
दोनों हाथ जोड़ पामी मां के चरणों में गिर पड़ा।

सेहणाचि शचातोर - प्रतिशोध के अन्धे पामी ने ननिहाल को समाप्त कर दिया। प्रायश्चित में सात नोऊड़ प्रेनाड़ा भी स्थापित किया। परन्तु आत्मग्लानि ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। पामी संसार त्याग वैराग्य धारण कर आत्म शान्ति की खोज में निकल गया। क्रोध और प्रतिशोध ने दो परिवार समाप्त कर दिए।

नोट :- पामी रतन के नोऊड़ प्रेनाड़ों के अवशेष कुछ दशक पहले तक योबरड. में देखे जा सकते थे।

-बलदेव रापा

बदलते रिवाज़ : रूप अनेक

सतीश कुमार लोप्पा

कुछ वर्ष पूर्व हमारे गांव में एक गमी का मौका पेश आया। जब 'सामा' यानि क्रियाकर्म का मौका आया तो रिवाज़ के अनुसार निकट सम्बन्धियों ने 'छोग: - शिमार्चु' के बरतन लाए। यह आटे और तेल की शक्ल में लाया जाता है जिन का 'कुरकुर - मार्चु' (तेल में तली हुई चपातियां) बना कर गांव तथा रिश्तेदारों को दान - स्वरूप बांटना होता है, इस दान को 'पति:' कहते हैं। हज़ारों 'मार्चु' बनाने पड़े। गांव के युवक मार्चु बनाते - बनाते तंग आ गए। अब जो 'छोग:' है उसको गांव वालों में सदस्य संख्या के आधार पर दान किया जाता है। छोग: का यह 'पति:' रिश्तेदारों को नहीं दिया जाता है। गांव वालों के पास कई - कई किल्टे मार्चु इक्ट्ठा हो गया। कितना खाया जाए। जितना खा सके खाया कई दिनों तक, शेष पालतू जानवरों को खिलाना पड़ा। यानि कि काफी भाग व्यर्थ चला गया। इस अधिक पकाने के श्रम और व्यर्थ जाने को रोकने के लिए कोई उपाय निकालने के लिए गांव के लोग तत्पर हो गए। अच्छी तरह सलाह - मशविरा कर लेने के बाद यह तय किया गया कि भविष्य में जो भी 'सामा' (=क्रिया कर्म) होगा उस में 'छोग:' वाला 'मार्चु' नहीं पकाया जाएगा। जो भी यह बरतन ले आने वाले होंगे उन से आटे और तेल के स्थान पर पैसे लिए जाएं। गांव की जनसंख्या के आधार पर गणना कर के आटे और तेल की मात्रा निर्धारित कर उस के मूल्य के बराबर राशि, जो उचित मूल्य की दुकान की दरों के अनुरूप हो, वह ले ली जाए और उस राशि को गांव के सांझा फण्ड में जमा कर दिया जाए। आगे चल कर यह राशि गांव के किसी विकास कार्य में लगाया जाए। यह निर्णय ले लिया गया। दुर्भाग्य वश कुछ ही समय बाद गांव में एक और गमी का मौका आन पड़ा। और उस 'सामा' पर गांव वालों ने उपर्युक्त निर्णय को अमली जामा पहनाया। बरतन लाने वालों को पहले ही बता दिया कि गांव का ऐसा निर्णय है, आप आटे - तेल के स्थान पर सूखे पैसे ही दें। उन को भी सुविधा हो गई, पीठ में उठा कर लाना नहीं पड़ा। गांव वाले अधिक पकाने के श्रम से बच गए, 'मार्चु' ज़ाया भी नहीं गया, गांव के विकास कार्यों के लिए धन जुटाने का एक अतिरिक्त छोटा सा जरिया भी बन गया। एक निर्णय, कई लाभ।

दरअस्ल लाहुल में प्राचीन काल से ही प्रत्येक समुदाय में अपने विशिष्ट रीति - रिवाज़ प्रचलन में रहे हैं। बदलते वक्त के साथ लोगों को अपने अनेक रीति - रिवाज़ों को बदलने की ज़रुरत महसूस हुई और उन्होंने इन्हें अपने विवेक के आधार पर जहां - जहां ज़रूरी समझा बदलना शुरू कर दिया। ऊपर का दृष्टांत यही स्पष्ट करने के लिए दिया है कि ये परिवर्तन किन हालात में और किस तरह से आ रहे हैं, तथा उन की दिशा क्या है। तो इन परिवर्तनों का परिणाम यह हुआ है कि एक ही समुदाय के अलग - अलग गांवों में अलग - अलग रीति - रिवाज़ अस्तित्व में आने लगे हैं, जो यत्र - तत्र प्रचलन में देखे जा सकते हैं। इस विषमता से समाज में रीति रिवाज़ों के स्तर पर एक विशृंखलता आई है जिस ने सामाजिक आचरण को प्रभावित एवं आन्दोलित किया है। एक सामाजिक बेचैनी साफ देखी जा सकती है जो इस विशृंखलता की देन है। अत: इस सामाजिक बेचैनी को दूर करने का एक ही उपाय है कि उक्त विशृंखलता और विषमता को दूर किया जाए। किसी भी समुदाय विशेष के भीतर रीति - रिवाज़ों को एकरूपता देने की आज ज़रूरत है, अन्यथा एक सामाजिक बिखराव की स्थिति धीरे - धीरे पनपती ही चली जाएगी जो आगे चल कर किसी भी समुदाय की पहचान को धूमिल कर सकती है तथा सांस्कृतिक पतन की ओर भी ले जा सकती है।

इस मोड़ पर 'चन्द्रताल' वैचारिक मंथन का एक मंच हो सकता है यदि गांवों में रहने वाले प्रबुद्ध जन - गण, जिन का प्रति दिन इन रीति रिवाज़ों से पाला पड़ता रहता है, चाहें तो ! इस माध्यम से वैचारिक स्तर पर जब एक खाका खिंच जाएगा तो प्रत्येक गांव के नुमांयदे ले कर एक सभा बिठाई जा सकती है जो विचार विमर्श कर पूरे समुदाय के लिए पुराने रिवाज़ के स्थान पर नई और एक समान व्यवस्था तय कर उसे स्थापित कर सकते हैं। इस तरह से समाज में किसी किस्म की बेचैनी और शिथिलता लाए बिना परिवर्तन लाए जा सकते हैं। हां, यह सब करने के लिए एक सामाजिक इच्छा - शक्ति का होना अति - आवश्यक है जो समाज को अपने अन्दर पैदा करनी होगी।

मिला रेपा की जीवनी : गुरु के दर्शन

ठिनले नमज्ञल एवं अजेय

गतांक में आपने पढ़ा

मिला ने 'थू' से अपने चाचा के पक्ष वाले पैंतीस शत्रु मार गिराए। शत्रुपक्ष को संदेह हो गया। उन्होंने मिला की माँ तथा बहन को सताना आरम्भ कर दिया। माँ ने एक योगी के हाथ यह संदेशा भेजा कि गाँव वाले अपनी हरकतों से बाज़ नहीं आ रहे। अतः अब ओला वृष्टि से उनका समूल नाश करो। साथ में स्वर्ण मुद्राएँ भेजीं। मिला ने ओलावृष्टि की साधना सात दिनों में पूरी की तथा गाँव पर कहर बरसाया। बीच में वह शत्रुओं से घिर गया तथा बड़ी कठिनाई से उनके चंगुल से निकल भागा। शत्रु विनाश के पश्चात् वह अब गुरू की शरण में प्रसन्नता पूर्वक रह रहा था।

थू, ओलावृष्टि, अभिचार आदि विद्याओं से मैं ऊब गया था। अत्यधिक हिंसा के पाप से हृदय दग्ध हो रहा था। अब मुझे केवल धर्म का स्मरण हो रहा था। भोजन करना भी भूल जाता था। मन व्याकुल रहता था। कहीं बैठूँ तो चल पड़ने का मन करता था और चलने लगूं तो इच्छा होती थी कि बैठ जाऊँ। रातों को नींद नहीं आती थी। घोर पश्चात्ताप से वैराग्य उत्पन्न होने लगा था।

ऐसे में गुरु की पत्नी असाध्य रोग से पीड़ित हो गई। जीवन भर जिस ने पति की सेवा की, उसे किसी चीज़ की कमी नहीं होने दी, सुखमय तथा खुशहाल जीवन जीती चली आई, उस धार्मिक एवं आस्थावान स्त्री को ऐसे अनिष्टकारी रोग ने आ घेरा था।

गुरु उनकी सेवा सुश्रुषा के लिए चले गए। तीन दिन पश्चात वे मुँह लटका कर वापिस लौट रहे थे। "गुरुवर! आपका चेहरा उतरा हुआ क्यों है?" मैंने पूछा। "समस्त संस्कार अनित्य हैं।" गुरु ने कहा- "मेरी प्रिय पत्नी का देहान्त हो गया। मेरा मन इसीलिए उचाट हो गया है। इस वृद्ध प्राणी ने जीवन भर हिंसा, जादू और अभिचार के अतिरिक्त कुछ नहीं किया। शिष्य, तुम ने भी अपना बहुमूल्य यौवन इन्हीं अकुशल कर्मों में गँवा कर अतिशय पापों का संचय किया। लगता है तुम्हारे पापों का बोझ भी मुझे उठाना पड़ेगा।" गुरु स्वयं को संभाल नहीं पा रहे थे।

"गुरुवर! आप स्वयं धर्म के ज्ञाता हैं। क्या आप उन समस्त मृतकों को मुक्ति प्रदान नहीं कर सकते?"

"निस्सन्देह, शिष्य, प्राणी मात्र के चित्त में धर्मतत्व के लक्षण हैं।"[1]

गुरु ने स्वीकार किया- "और उन्हें मुक्त करने का अनुष्ठान भी मैं जानता हूँ। लेकिन व्यवहारिक रूप में वह कितना लाभ प्रद होगा, निश्चय पूर्वक नहीं कह सकता। इसलिए अब वास्तविक धर्म के मार्ग में प्रवेश करना चाहता हूँ। तुम मेरे शिष्यों का ध्यान रखना मैं तुम्हारे निर्वाण के लिए यत्न करूँगा।"

"हे गुरुवर! मैंने अपनी सभी सांसारिक इच्छाएँ पूरी कर दी हैं। अब मैं सद्धर्म मार्ग पर चलना चाहता हूँ। मुझे आज्ञा दीजिए।"

"तुम्हारा यौवन, तुम्हारी लगन और श्रद्धा देखकर मैं आश्वस्त हूँ कि तुम धर्म के मार्ग को अपना सकोगे।"

गुरु ने थेरमा, बीस पत्था जौ, मुझे उपहार देकर च़ड्रूड् के नर नामक स्थान पर लमा रोड्तोन् ल्हगा नामक सिद्ध के पास भेजा। रोड्तोन् ल्हगा प्राचीन 'ज़ोग्छेन' सम्प्रदाय के सिद्ध थे। मैंने वहाँ जाकर पूछताछ की। शिष्यों ने मुझे बताया कि मुख्य गोम्पा तो यही है लेकिन गुरु इस समय उप गोम्पा में मिलेंगे।

मैंने निवेदन किया "मुझे लमा युड्तोन ठोग्याल ने भेजा है। किसी भी तरह से मुझे गुरु के दर्शन करने हैं। कृपया मेरी सहायता करें।" मैंने अपनी सम्पूर्ण कथा उन्हें सुनाई। उनमें से भिक्षुणी मेरी कथा सुनकर द्रवित हो गई तथा एक बटुक को मार्गदर्शक बना कर मेरे साथ भेज दिया।

थेरमा तथा जौ प्रस्तुत करते हुए मैंने निवेदन किया-

"मैं ञिमा ल तोद' से आया महापापी हूँ। इसी जीवन में मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से धर्म की दीक्षा चाहता हूँ।"

गुरु ने कहा- "ज़ोग्छेन सद्धर्म की वह शाखा है जिसमें अति अल्प प्रयासों से ही निर्वाण संभव है। दिन को साधना करने

1 *तांत्रिक बौद्ध धर्म का तिब्बती कर्ग्युद सम्प्रदाय विज्ञानवाद के दर्शन पर आधारित है। जिसके अनुसार प्रत्येक प्राणी में बुद्धत्व प्राप्ति के लक्षण होते हैं।*

पर दिन को तथा रात को करने पर रात को ही मुक्त हो सकते हैं। सौभाग्यवान कर्मशील व्यक्ति तो बिना साधना किए, श्रवण मात्र से ही मुक्त हो जाते हैं। यह तीक्ष्ण बुद्धि वालों का मार्ग है। तुम सुपात्र हो, अत: मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।"

अभिषेक एवं उपदेश के दौरान मेरे मन में विचार आया कि मैंने 'थू' की साधना चौदह दिनों में तथा ओलावृष्टि मात्र सात दिनों में पूरी की थी। भाग्यवान तो मैं हूँ ही कि आसानी से इस सरल मार्ग का अभिषेक प्राप्त हो गया। मुझे गर्व अनुभव होने लगा। बिना साधना किए सोता रहा।

साधना में अरुचि देखकर कुछ दिन पश्चात् गुरु ने कहा- "तुमने ठीक ही कहा था कि तुम ञिमा लतोद के महापापी हो। मैंने भी संभवत: उत्साह में अपने सम्प्रदाय के बारे अतिशयोक्ति कर दी थी। मैं तुम्हारा उद्धार नहीं कर पाऊँगा। तुम लोडाग् डोवोलुङ् नामक गोम्पा में भारत के सिद्ध नरोपा के शिष्य परम पुरुष महानुवादक मरपा लोचावा के पास जाओ। नवतंत्र[1] में तीनों लोकों में उसका कोई सानी नहीं है। उनके साथ तुम्हारा पूर्व जन्मों के कर्म का सम्बन्ध भी रहा है। वही तुम्हें मुक्त कर पाएँगे।"

महानुवादक मारपा के नाम श्रवण मात्र से मन प्रफुल्लित हो गया। मैं गद्गद् हो गया। देह का रोम-रोम प्रकंपित हो रहा था। श्रद्धा एवं भक्ति से बरबस अश्रुधारा फूट रही थी। कुछ ग्रन्थ एवं मार्ग के लिए अन्न इत्यादि लेकर डोवोलुङ् के लिए प्रस्थान कर गया। मन विचार शून्य सा था। केवल एक विचार बार-बार मन में आता था कि कब गुरु के दिव्य मुखमंडल के दर्शन होंगे।

उधर डोवोलुङ् में महानुवादक मारपा ने एक अद्भुत स्वप्न देखा। महापंडित नरोपा ने स्वयं आकर अभिषेक दिया। रत्न वैदूर्य[2] से निर्मित वज्र[3] जो पाँच कमानियों वाला था और ज़रा सा मैला था, तथा अमृत से भरा स्वर्ण कलश गुरू मारपा के हाथों में थमा कर बोले- "इस वज्र पर जो ज़रा सा मैल जमा है उसे कलश के जल से धो लो और उसे ध्वज के अग्र भाग पर अर्पित करो। इससे पूर्व के समस्त जिन[1] प्रसन्न होंगे तथा छह योनियों[2] के समस्त प्राणी नतमस्तक होकर स्वार्थ एवं परार्थ की सिद्धि करेंगे।"

इतना कह कर नरोपा आकाश में अंतर्ध्यान हो गए। गुरु मारपा ने पवित्र जल से वज्र की शुद्धि की। ध्वज के अग्रभाग पर उसे अर्पित किया। वज्र की आभा से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशमान हो गया। छह योनियों के समस्त जीवों में प्रकाश का संचार होने लगा। उन का दु:ख तिरोहित होने लगा। परम सुख की अनुभूति करते हुए वे गुरु मारपा एवं ध्वज को नमन करने लगे। पवित्र स्तुति गान से वातावरण गुंजायमान हो रहा था। समस्त जिन ध्वज की प्राण प्रतिष्ठा के इस अनुष्ठान में भाग ले रहे थे।

इस अभूतपूर्व स्वप्न को देखते-देखते गुरु मारपा की निद्रा प्रसन्न चित्त अवस्था में ही टूट गई। जागने पर उन्हें अत्यधिक हर्ष की अनुभूति हुई। गुरु पत्नी ने उसी समय अग्नि के लिए भीतर कदम रखा। उन्होंने भी एक अलौकिक स्वप्न का दर्शन किया था।

द्वार पर सुदूर पश्चिम में उदयन[3] देश से आई हुई दो दिव्य स्त्रियाँ खड़ी थी। उनके हाथों में स्फटिक से निर्मित एक स्तूप था जो बाहर से ज़रा मलिन था। उन्होंने सूचित किया कि महा पंडित नरोपा ने आदेश दिया था कि गुरु मारपा ही इस स्तूप की प्राण प्रतिष्ठा करें। तत्पश्चात् पवित्र जल द्वारा स्तूप की शुद्धि कर दी गई। प्राण प्रतिष्ठा का विस्तृत अनुष्ठान पूर्ण होने पर स्तूप को पर्वत शिखर पर स्थापित कर दिया गया। स्तूप से अखंड प्रकाश रश्मियाँ निसृत हो रही थी। मानो चन्द्रमा और सूर्य उस में समा गए हो। देखते-देखते उस जैसे असंख्य स्तूप उद्भूत हो गए। समस्त पर्वत शिखर उन प्रकाश पुंजयुक्त स्तूपों से भर गए। दिव्य स्त्रियाँ पुजारिनों की भांति काम करती फिर रहीं थीं।

"स्वामी, इस उद्भुत स्वप्न का क्या अर्थ हो सकता है?" अग्नि के लिए अन्दर आई गुरु पत्नी ने पूछा।

दोनों स्वप्नों में विचित्र संयोग था। गुरु मारपा यह सोच कर मन ही मन प्रसन्न थे। लेकिन प्रकट में बोले -

"भला यह भी कोई बात हुई? इस स्वप्न का कुछ भी अर्थ हो सकता है और कुछ भी नहीं हो सकता। मैं क्या बता सकता हूँ? अच्छा, मुझे रास्ते के साथ वाले खेत पर हल जोतने जाना है।"

गुरु पत्नी ने आश्चर्यचकित होते हुए कहा- "इतने सारे चाकरों के होते हुए आप स्वयं काम पर जाएँगे? लोग क्या कहेंगे?"

---

1 नवतंत्र = तंत्रयान तिब्बत में दो बार प्रसारित हुआ। पद्म संभव 8th C.AD के काल में जो धर्म फैला उसे 'ङग् ञिङ्मा' (प्राचीन तंत्र) नाम दिया गया। बाद में 10th C.AD में मारपा आदि सन्त जो धर्म भारत से लाए उसे 'ङग् सरमा' (नवतंत्र) कहा गया।

2 वैदूर्य = LAPIS-LAZULI (लाजवर्द) पीले, हरे, श्वेत वर्णों में प्राप्त अमूल्य रत्न।

3 वज्र = तांत्रिकों द्वारा अनुष्ठान के समय दाहिने हाथ में धारण किया जाने वाला (सामान्यत: धातु निर्मित चार कमनियों वाला) उपकरण।

पत्नी की बात अनसुनी करते हुए गुरु बोले–

"मेरे लिए छङ् लेकर आओ।"

पत्नी कलश भर छङ् ले आई।

"इतना तो मैं ही पी जाऊँगा। अतिथियों के लिए कहाँ है?"

पत्नी एक कलश और लेकर आई।

हल जोत कर गुरु छङ् पीते हुए विश्राम करने लगे। एक कलश मिट्टी में दबा कर ऊपर से टोपी ढक दी।

इधर मैं लोडाग् के मार्ग पर जो भी मिलता उससे महानुवादक मारपा का पता पूछते हुए जा रहा था। कोई भी इस नाम से अवगत नहीं था। अन्ततः मैं उस पर्वत शिखर पर पहुँचा जहां से डोवोलुङ् गाँव दिखता था। एक व्यक्ति ने मुझे बताया कि परमपुरुष, महानुवादक इत्यादि का तो पता नहीं, लेकिन मारपा नाम के एक व्यक्ति को मैं जानता हूँ। उत्सुक होकर मैंने पूछा–

"डोवो लुङ् गाँव कहाँ है?"

उस व्यक्ति ने उंगली के इशारे से सामने वाला गाँव दिखाया।

"क्या मारपा नामक व्यक्ति वहीं रहता है?"

"हाँ!"

"क्या वह किसी अन्य नाम से भी जाना जाता है?"

"कुछ लोग उसे लमा मारपा कहते हैं।"

अहा! मैं अपने लक्ष्य के निकट था! आश्वस्त होकर पूछा–

"इस दर्रे का नाम क्या है?"

"इसे 'छोस्ल गङ्' (धर्म पर्वत) कहते हैं।

धर्मपर्वत से गुरु निवास अति मनोरम दृष्टि गोचर हो रहा था। इससे अच्छा शुभ शगुन और क्या हो सकता था? मेरी प्रसन्नता का कोई अन्त न था।

नीचे उतरते हुए कुछ चरवाहे मिले। उन्हें पूछा तो वयस्क एवं वृद्ध चरवाहों ने अज्ञानता प्रकट की। उनमें से एक बालक जिसका चेहरा अति चित्ताकर्षक था तथा मूल्यवान आभूषण पहने हुए था। उसके तेलयुक्त केश आकर्षक ढंग से संवरे हुए थे। उस वाक्पटु नन्हे चरवाहे ने कहा–

"क्या मेरे ज्येष्ठ पिता श्री के सम्बन्ध में पूछ रहे हो? यदि उन्हीं के बारे पूछ रहे हो तो मैं आप को बता दूँ, कि वे तो अपनी सारी सम्पत्ति के बदले सोना खरीद कर भारत चले जाते हैं और बदले में अत्यधिक संख्या में लम्बी–लम्बी पोथियाँ खरीद लाते हैं। जीवन में कभी कृषि का काम नहीं किया, लेकिन आज न जाने क्यों सुबह से ही खेत पर हल जोत रहे हैं।

बालक की बातों से मैं फिर से आशंकित हुआ। मेरा विवेक स्वीकार नहीं करता था कि परमपुरुष महानुवादक की उपाधि वाला गुरु खेत पर हल चलाता हुआ मिलेगा। इस उधेड़ बुन में गाँव की ओर बढ़ता जा रहा था कि खेत पर एक विशालकाय भिक्षु हल जोतता हुआ दिखाई दिया। वह बहुत ही स्थूलकाय था तथा उसकी बड़ी–बड़ी ओजस्वी आँखें थीं।

उन्हें देखते ही मैं अवर्णनीय सुख से सराबोर हो गया। उस अकल्पनीय आनंदमयी अनुभूति से मैं हतप्रभ रह गया। मानो क्षण भर के लिए मेरी हृदयगति ही रुक गई। स्वयं को संभालते हुए मैंने पूछा–

"अरे मुखिया जी, इस गाँव में नरापा के प्रमुख शिष्य महानुवादक मारपा कहाँ रहते हैं?"

भन्ते मुझे सर से पाँव तक निहारते रहे। कुछ देर बाद उल्टा प्रश्न करने लगे–

"तुम कहाँ से आए हो? क्या करते हो?"

---

1 *जिन–तिब्बती 'ज्ञलवा' = माध्यमिक दर्शन की अवधारणा में जिन वह व्यक्ति है जिसने तीन क्लेशों (राग, द्वेष, मोह) पर विजय प्राप्त किया हो। इस ग्रन्थ में अन्यत्र रालवा शब्द का प्रयोग बुद्ध के अर्थ में भी हुआ है।*

2 *छह योनियाँ।*

3 *उदयन = प्राचीन भोट देश में कश्मीर को इस नाम से जाना जाता था।*

"मैं चङ् के लतोद् का महापापी हूँ। गुरु मारपा की ख्याति सुनकर उनसे सद्धर्म की दीक्षा लेने आया हूँ।"

"बहुत अच्छे! मैं तुम्हारी भेंट मारपा से करवाऊँगा। तब तक तुम हल जोतो।"

उन्होंने टोपी पहनी और धरती के नीचे दबाया छङ् निकाल कर मुझे पिलाया। उस समय मुझे वह छङ् बहुत मीठा लगा। मुझे आज भी याद आता है।

"ठीक से हल चलाना! सभी ढेले ठीक से टूटने चाहिएं।"

निर्देश देकर भन्ते गाँव लौट गए। बचा हुआ छङ् पीकर मैं धीरे-धीरे हल जोतता रहा। कुछ देर बाद वही नन्हा चरवाहा गाँव की ओर से आता दिखाई दिया, जिसने मुझे रास्ता बताया था।

"तुम्हें गुरु ने बुलाया है।"

मैं प्रसन्न हुआ। सोचा, भन्ते ने मेरी बड़ी सहायता की है। इतने महान गुरु तक मेरा संदेशा पहुँचा दिया। मुझे भी उनका काम यथा संभव अच्छी प्रकार से करना चाहिए। बचा हुआ काम समाप्त कर मैं उस बालक के साथ चल दिया।

उस खेत का नाम कालान्तर में 'थुन केन' (मिलन हेतु) पड़ गया। क्योंकि उसी खेत के कारण मेरा गुरु से मिलना संभव हुआ था। भीतर प्रवेश करने पर मैंने देखा कि वही भन्ते एक ऊँचे आसन पर विराजमान था। आसन पर गद्दों की दो तहें थी। उस पर कालीन बिछा हुआ। उनकी बड़ी-बड़ी आँखों में मानो अभी विशाल गिद्ध प्रवेश कर जाएँगे। नथुने ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो एक चौड़ी घाटी हो। दाढ़ी बढ़ी हुई तथा तोंद की चर्बी लटकती हुई। ओज पूर्ण चेहरा लिए हुए वे गाव तकिया के सहारे आसन पर विराजमान थे।

मैंने सोचा, ये तो वही भिक्षु हैं जो खेत पर मिले थे, गुरु मारपा कहाँ होंगे? मैं इधर उधर खोजने लगा।

मन्द-मन्द मुस्कराते हुए गुरु बोले-

"लगता है अभी तक तुम मुझे पहचान नहीं पाए। मैं ही मारपा हूँ। मुझे प्रणाम करो।"

प्रणाम करते हुए मैं गुरुचरणों में गिर गया। "हे गुरु रत्न! मैं ञिमा लतोद् से आया महापापी हूँ। काया-वाक्-चित्त आपको समर्पित करता हूँ। आप मुझे सद्धर्म की दीक्षा दें। साथ में भोजन तथा कपड़ा भी। मैं इसी जन्म में मुक्त हो जाना चाहता हूँ।"

"सुनो नवयुवक! ये गर्वोक्तियाँ मेरे सामने नहीं चलेंगी। तुमने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए पापों का संचय किया होगा, न कि मेरे कहने पर। तुम अपने पापों के सम्बन्ध में विस्तार से मुझे बताओ।"

मैंने पूरी कथा गुरु को सुनाई।

"अच्छा, तुमने जो काया-वाक्-चित्त समर्पण की बात कही है, वह तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन मैं या तो भोजन एवं कपड़ा दे सकता हूँ या केवल धर्म। ऐसा करते हैं भोजन-कपड़े का प्रबन्ध मैं करता हूँ, धर्म तुम अन्यत्र ढूँढो या फिर जैसा तुम चाहो। कोई एक चुनना पड़ेगा। हाँ, एक बात फिर भी ठीक से समझ लो। यदि तुम धर्म का विकल्प चुनते हो, तो भी मैं आश्वासन नहीं दे सकता कि इसी जीवन में बुद्ध हो जाओगे। यह तो तुम्हारे उद्यम पर निर्भर करेगा।"

"ठीक है, आप मुझे शिष्य स्वीकारें।" मैंने एक दम निर्णय लिया।

"भोजन तथा कपड़े का प्रबन्ध मैं कहीं भी कर लूँगा।"

ऐसा कहते हुए मैं अपनी पोथी उन्हें प्रस्तुत करने लगा।

"छोकरे! मुझे तुम्हारी यह फटी पुरानी पोथी नहीं चाहिए। इसे तुरंत यहां से बाहर निकालो। यह मेरे तेन छोद[2] को जुकाम से संक्रमित करेगा। गुरु का क्रोध देखकर मैंने अनुमान किया कि मेरी पोथी के बीच 'थू' का ग्रन्थ विद्यमान होने की भनक गुरु को लग गई थी।

अस्तु, मुझे गुरु के घर में रहने की अनुमति मिल गई। मैं कुछ दिन अत्यन्त सतर्कता पूर्वक वहाँ रहा। मैं किसी को अप्रसन्न करना नहीं चाहता था। धीरे-धीरे मैंने गुरु माता का विश्वास जीता। वे मुझे स्वादिष्ट व्यंजन खिलाती।

गुरु दर्शन की लीला, जो सर्वोत्तम तथा सर्वप्रथम लीला है, समाप्त हुई।

---

1 तेन छोद : पूजा की वस्तुएँ। जिसमें बौद्ध अवधारणा के अनुसार ग्रन्थ, मूर्तियाँ तथा साधक का 'चित्त' (धर्म की भावना) भी शामिल होता है।

चन्द-किन्नर जातक और लाहुल-स्पिति का परिवेश

सतलुज की उपरली उपत्यका जो तिब्बत की सीमा के साथ लगती है और भारतीय सीमा में पड़ती है, को आधुनिक काल में किन्नौर नाम से जानते हैं। किन्नौरी अपनी भाषा में स्वयं को कनौरिंग अथवा कनौक, तथा अपनी भाषा और प्रदेश को भी कनौरिंग ही कहते हैं।

प्रश्न है कि क्या इनका प्राचीन किन्नरों से कोई रिश्ता है। अनेकों विद्वानों ने इस ओर प्रयत्न किया है और अधिकतर इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि आधुनिक 'कनौर' का प्राचीन किन्नर से अवश्य सम्बन्ध है।

भारतीय प्राचीन वाङ्मय में किन्नरों के विषय में कुछ विचित्र वर्णन मिलते हैं। वर्तमान में हमें उस अस्पष्ट वीहड़ से हटकर रहना उचित है। इस सम्बन्ध में राहुल सांकृत्यायन ई० पू० द्वितीय-तृतीय सदी के एक बौद्ध ग्रन्थ सुत्तपिटक के 'विमानवत्थु' खंड से निम्न पद्य उद्धृत करते हैं।

'चन्द्र भागा नदी तीरे अहोसि किन्नरतदा।'

अर्थात् चन्द्र भागा नदी को तटों पर किन्नर लोग निवास करते हैं। सतलुज और चन्द्र भागा नदियों की घाटियां एक-दूसरे से सटी हुई है, जिसमें प्रतीत होता है कि किन्नर जाति के लोग इन दोनों घाटियों में निवास करते थे। राहुल सांकृत्यायन अन्य प्रमाणों के साथ बताते हैं कि प्राचीनकाल में इसका क्षेत्र इससे भी अधिक विस्तृत था।

इस विषय में बौद्ध वाङ्मय से ही एक और साक्ष्य प्राप्त हुआ है, वह है चन्द-किन्नर जातक की कहानी।

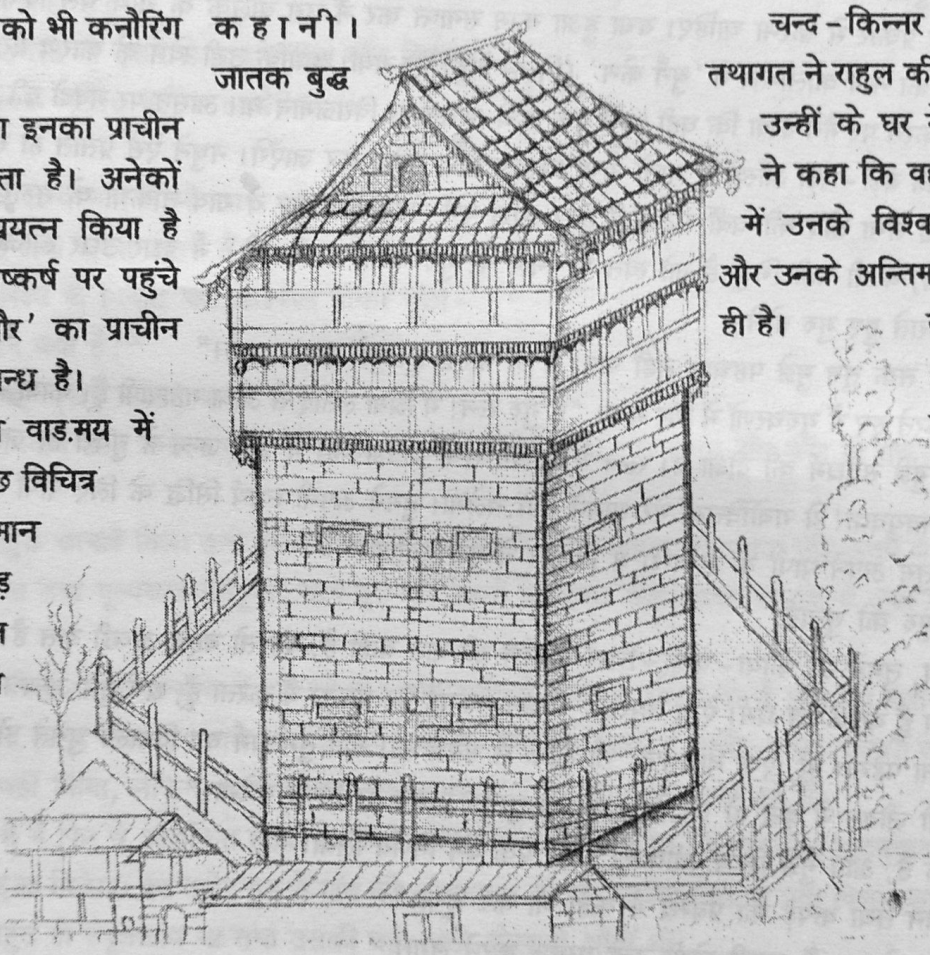

जातक बुद्ध के पूर्व-जन्म की कहानियां हैं। प्रतीत होता है कि यह कहानी उपासकों में काफी लोकप्रिय रही है; क्योंकि गन्धार में इसका शिला पट्टी पर उकेरे चित्रण प्राप्त हुए हैं जो 'इंडिया-म्यूज़ियम' में सुरक्षित है। यह कथा जातक कथाओं में प्राचीनतम कथाओं के समूह में गिना जाता है। इसलिए यह कथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और सम्माननीय है। 'कोवेल', जो जातक कथाओं के संग्रहों के अंग्रेजी अनुवाद के सम्पादक हैं, बताते हैं कि यह कथा बौद्ध जगत में बुद्ध के अस्तित्व के तीन खंडों में से प्राचीनतम खंड 'दूरेनिदानम्' में से है।

चन्द-किन्नर जातक की कथा तथागत ने राहुल की मां की प्रशंसा में उन्हीं के घर में कही। तथागत ने कहा कि वह सभी पूर्व जन्मों में उनके विश्वास-पात्र रही है और उनके अन्तिम जन्म में भी ऐसी ही है। तब उन्होंने कथा आरम्भ करते हुए कहा :

एक समय जब ब्रह्मदत्त बनारस में राजा थे, तथागत का जन्म हिमालय में किन्नर योनि में हुआ। उस समय उनका नाम था 'चन्द' और उनकी पत्नी का नाम था 'चन्दा'। वे दोनों चांदी जैसे श्वेत पर्वत, चन्द-पर्वत, जिसका भाव है 'चांद का पर्वत', पर निवास करते थे।

उसी समय बनारस का राजा राज-पाठ अपने मन्त्रितयों के हाथ सौंपकर दो भगवे वस्त्र और पांच हथियार डालकर अकेले ही हिमालय की ओर निकल पड़े। देवयोनि के ये जन वर्षा

ऋतु में ऊपर ही पर्वत पर निवास करते थे तथा अधिक गर्मी होते ही नीचे नदी किनारे उतरते थे। उस समय यह देव 'चन्द' अपनी प्रियतमा के संग नीचे उतरा, सुगन्धों का उबटन किया और, पुष्प के पराग आहार रूप में लिए लताओं पर झूलते हुए मधु के समान मधुर गीत गुनगुनाने लगे।

राजा ने उनकी आवाज़ सुनी और धीरे-धीरे छुप-छुप कर उनके निकट आया और उनको खेलते हुए देखने लगा। उसने निश्चय किया, 'मैं पति का वध करुंगा और यहां उनकी पत्नी के संग रहूंगा।

तब उसने 'चन्द' पर तीर चलाया और वह कराहने लगा तथा पुष्प के पलंग पर बेहोश होकर एक ओर लुढ़क गया। उसे इस दशा में देख कर चन्दा ने चीख मारी। राजा समझ गया कि अब देव की मृत्यु हो गई है। अत: सम्मुख आकर उसने स्वयं को प्रकट किया।

चन्दा ने उसे देखा और समझ गई, 'यही वह दुष्ट है जिसने मेरे प्रिय पति की हत्या की है।' कांपती हुई वह ऊपर की ओर भागी और पर्वत के एक ऊंचाई से राजा को फटकार लगाई।

जब राजा की समझ में आ गई कि यह बात नहीं बनने वाली है तब वह वापिस हो गया। चन्दा तुरन्त फिर नीचे उतरी और उसने अपने प्रिय के सिर को अपनी गोद में रखा तथा उनके हाथ को अपने वक्ष से चिपकाया। उसने पुलकित होकर पुकारा, मेरा चन्द अभी जीवित है!' उसने उसके हाथ में गर्माहट अनुभव किया था।

उसने तुरन्त 'शक्क' को पुकारा। उसका आसन तप्त हो गया और वह इसका कारण जान गए। वे एक ब्राह्मण के भेष में आए और अपने जलकमण्डलू से तथागत पर जल का छिड़काव किया। अपने प्रिय को जीवित देख 'शक्क' के चरणों में गिर प्रार्थना करने लगी।

'मैं आपकी प्रशंसा करती हूँ, ओ पवित्र ब्राह्मण। जिसने मुझ जैसे असहाय स्त्री के प्रिय पति के प्राण बचाए, उनके ऊपर अमृत का छिड़काव करके'।

शक्क ने तब उन्हें यह उपदेश दिया, 'अब के बाद चन्द पर्वत से नीचे, मानव निर्मित पथ पर मत जाना, बल्कि यहीं निवास करें'

शक्क ने यह बात फिर दोहराया और तब उन्होंने अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया।

चन्दा ने तब अपने प्रिय से प्रार्थना की : 'मेरे देव! यहां हम भय में क्यों रहें, आओ! और चन्द पर्वत पर चलते हैं।'

तब तथागत ने अपने पूर्व जन्म की पहचान बताई, 'अनुरुद्ध राजा थे, राहुल की मां चन्दा और मैं स्वयं वह देव था।'

इस कहानी का सार बताता है कि एक बार पूर्व जन्म में तथागत ने हिमालय में चन्द-पर्वत पर किन्नर' जाति में जन्म लिया। वास्तव में हमारी वर्तमान रुचि इन्हीं दो विषय-वस्तुओं 'किन्नर' और 'चन्द' पर्वत में है।

हमने यह ऊपर देख लिया है कि किन्नर लोग अभी भी लगभग उन्हीं स्थानों पर निवास कर रहे हैं जहां वे लगभग दो हज़ार दो सौ वर्ष पूर्व बौद्ध साहित्य में चिन्हित किए गए थे। इनका कारण है उनकी कठिन भौगोलिक परिस्थिति, जिसको अन्य ताकतवर आक्रमणकारी नहीं हथिया सके। अत: हमें दिशा मिलती है कि हम चन्द-पर्वत को किन्नरों की पारम्परिक स्थली में ही खोजें।

आज पूरे हिमालय में कोई भी पर्वत 'चन्द' अथवा 'चन्द्र' नाम से स्थित नहीं है परन्तु यदि किन्नरों की पारम्परिक इलाके पर दृष्टिपात करें तो हमें कुछ विशिष्ट भौगोलिक प्रतीक दृष्टिगोचर होते हैं इनके नाम 'चन्द' अथवा 'चन्द्र', जिनका एक ही भाव है, की अनुगूंज से भरपूर है। ये है चन्द्रताल (चन्द्र-झील), तथा चन्द्र और चन्द्रभागा नदियां। ये तीनों नाम 'चन्द्र शब्द से जुड़ी है और तीनों प्रतीकों का आपस में पूर्ण रूप से घनिष्ठ सम्बन्ध है। चन्द्रताल में चन्द्र नदी का उद्‌गम होता है तथा आगे आकर लाहुल में तन्दी में भागा नदी से मिलकर संयुक्त चन्द्रभागा नदी का निर्माण करती है। इन रास्तों में कई पर्वत बर्फ के श्वेत चादर ओढ़े खड़े हैं। इन्हीं में से कोई पर्वत 'चन्द-पर्वत' रहा होगा जिसका नाम लम्बे समय तक प्रयोग में न रहने के कारण लुप्त हो गया।

अत: चन्द-किन्नर जातक के तथागत-किन्नर ने अपने इस जीवनकाल में जीवनयापन करते हुए लाहुल-स्पिति की धरती को पवित्र किया।

हम यह भी जान गए है कि चन्द-पर्वत वास्तव में एक पर्वत था तथा किन्नर एक साधारण मानव जाति है।

-तोबदन

फोरोग – प्रेषण

(मूल – पाठ)

सतीश कुमार लोप्पा

लाहुल की पटन घाटी के बौद्ध एवं गरू समुदायों में विवाह के समय सम्पन्न की जाने वाली आवश्यक रस्मों में 'फोरोग – च़र्चि' अर्थात काग – प्रेषण भी शामिल था। लेकिन यहां के तथाकथित प्रगतिशील लोगों ने इसे तथा कई अन्य रस्मों को भी दशकों पूर्व ही त्याग दिया। तर्क यह दिया जाता कि इन रस्म अदायगियों में समय का अपव्यय होता है, क्या रखा है ऐसे रस्मों में। विवाह के मूल रस्मों को त्याग कर समय बचाया गया, पर किस खातिर? शराब पीने और मीट खाने के लिए ? मज़े की बात तो यह है कि किसी भी बड़े विवाह में कम से कम तीन दिन जम कर खाते पीते हैं। और मुश्किल से आधा घंटा चलने वाली रस्मों की पूर्ति में कहते हैं समय का अपव्यय हो रहा है। बाहर से नकल कर लाए अनाप – शनाप रस्मों के लिए समय निकाल लेते हैं। अपनी अच्छी चीज़ें त्याग कर औरों की थोथी चीज़ें अपनाना, क्या यह प्रगतिशीलता की निशानी है? खैर, जो भी हो, सोच अपनी अपनी, कोई क्या कर सकता है। सच्चाई बहरहाल यही है कि जो असल महत्व के विवाह रस्म थे, वे त्याग दिए गए या छोटे कर दिए गए। इन परित्यक्त रस्मों में काग – प्रेषण का एहम स्थान था। इस रस्म में एक विशेष गीत गाया जाता था जिसकी भाषा 'बोद – भाषे' अर्थात भोटी है।

विवाह के दिन पहले से तय समय पर बारात वधू – पक्ष के घर पहुंच जाती है। वहां परम्परानुसार उन की आवभगत की जाती है। दोपहर के भोजन से पूर्व शिरदार, बग्ट्रिक्पा, दूल्हे आदि को अलग कमरे में ले जा कर पूर्वाभिमुख बिठाया जाता है। बग्ट्रिक्पा अपने तीर पर लगे खतग (= छोटे आकार का पटका) को दुल्हन के दाएं कंधे पर सूई के साथ फंसा कर उस का मार्गदर्शन करता हुआ, दूल्हे के पास ला कर उसके बाईं ओर बिठा देता है। दुल्हन के साथ एक अन्य महिला भी साथी के रूप में बैठती है। दुल्हन को इस तरह बिठाना 'ट्रिल्ड्रि' कहलाता है। फिर उपयुक्त समय पर वर पक्ष का 'सेहणु' अर्थात विवाह – संचालक 'फोरोग – च़र्चि' यानि काग – प्रेषण की तैयारी करने के लिए आग्रह करता है। एक परात में पर्याप्त मात्रा में 'दू' लाया जाता है। 'दू' सत्तू को उबलते पानी में पका कर बनाया गया सख्त सा बिना घी वाला हलवा होता है जिस में स्वाद – अनुसार नमक डाला गया होता है। इस 'दू' को चौरस आकार दिया जाता है। चौरस 'दू' को इस प्रकार स्थापित किया जाता है कि प्रत्येक कोना एक एक दिशा की ओर अभिमुख हो। इस के चारों कोनों तथा मध्य में देवदारू की लकड़ी, 'हल्छः' के पांच – छह इंच लम्बे और पतले टुकडे खड़े कर के प्रत्येक के ऊपर 'दू' से बना एक – एक पक्षी यानि काग बिठा दिया जाता है। प्रत्येक 'फोरोग' अथवा काग का मुख अपनी निर्धारित दिशा की ओर रखा जाता है जबकि मध्य वाले काग का मुख पूर्व की ओर रहता है। चौरस 'दू' के इर्द – गिर्द परात में भेड़ या बकरे की अग्र – भुजा का एक बड़ा सा टुकड़ा, मांस के पांच अन्य बड़े टुकड़े जिन्हें 'शाखल' कहते हैं, एक प्याली लबा – लब भरा हुआ घी, 'एठ' यानि कुर – कुरी चपातियां, 'मार्चु' यानि तले हुए मोटे – मोटे भटूरे आदि भोज्य वस्तुएं रख दी जाती हैं। ये सारी चीज़ें तैयार हो जाने के बाद 'फोरोग – प्रेषण' आरम्भ किया जाता है। कायदे के अनुसार वधू के घर में वरपक्ष के सेहणु को तथा वर के घर में वधू – पक्ष के सेहणु को यह रस्म सम्पन्न करना होता है। यदि सेहणु लोग इस की जानकारी नहीं रखते हैं तो किसी भी अन्य जानकार व्यक्ति से निवेदन कर इस कार्य को सम्पन्न करवाया जा सकता है।

फोरोग – प्रेषण गीत आरम्भ :–

गई फोरोग थोङ थोङ कङ ला थोङ।
गई फोरोग थोङ थोङ शर ला थोङ।
शर गी का चा चिन डा रे।
शर गी का चा ञा ला रे।
कुई ञोन दङ मी ञोन।
शर गी ज्ञाफो कू खम् जङ्।
शर गी ज्ञाफो मलः दु जुङ्।
शर गी दोरजे सेम्बा मलः दु जुङ्।
मी गी लेइ ले चिन डा रे।
मी गी लेइ ले आ ला रे।
मी गी लेई ले कू खम् जङ्।
शर गी फोरोग शर ला फुर।

अब पूर्वी फोरोग को लकड़ी समेत परात में गिरा कर रख दिया जाता है।

गई फोरोग थोङ थोङ कङ ला थोङ।
गई फोरोग थोङ थोङ चङ ला थोङ।

चाङी का चा चिन डा रे।
चाङी काचा आला रे
कुइ ओन दङ मी ओन।
चाङी ज्ञाफो कू खम् ज़ङ्।
चाङी ज्ञाफो मल: दु जुङ्।
(चङ दोन योद डुब पा मल: दु जुङ।)
मी गी लेई ले चिन डा रे।
मी गी लेइ ले आ ला रे।
मी गी लेइ ले कू खम् ज़ङ्।
चाङी फोरोग चङ ला फुर।

उत्तर की ओर मुख वाले फोरोग को भी गिरा कर रख दिया जाता है।

गई फोरोग थोङ थोङ कङ ला थोङ।
गई फोरोग थोङ थोङ नुव ला थोङ।
नू गी काचा चिन डा रे।
नू गी काचा आ ला रे।
(नुब नङ वा थाया मल: दु जुङ।)
कुई ओन दङ मी ओन।
नू गी ज्ञाफो कू खम् ज़ङ्।
नू गी ज्ञाफो मल: दु जुङ्।
मी गी लेइ ले चिन डा रे।
मी गी लेइ ले आ ला रे।
मी गी लेई ले कू खम् ज़ङ।
नू गी फोरोग नुब ला फुर।

पश्चिम को ओर मुख वाले फोरोग को भी गिरा दिया जाता है।

गई फोरोग थोङ थोङ कङ ला थोङ।
गई फोरोग थोङ थोङ ल्हो ला थोङ।
ल्हो गी का चा चिन डा रे।
ल्हो गी का चा आ ला रे।
(ल्हो रिन चेन जुङ-दन मल: दु जुङ।)
कुई ओन दङ मी ओन।
ल्हो गी ज्ञाफो मल: दु जुङ।
ल्हो गी ज्ञाफो कू खम् ज़ङ।
मी गी लेइ ले चिन डा रे।
मी गी लेइ ले आ ला रे।
मी गी लेइ ले कू खम् ज़ङ।
ल्हो गी फोरोग ल्हो ला फुर।

दक्षिण की ओर मुख वाला फोरोग भी गिरा कर रख दिया जाता है।

गई फोरोग थोङ थोङ कङ ला थोङ।
गई फोरोग थोङ थोङ तङ ला थोङ।
ताङी का चा चिन डा रे।
ताङी का चा आ ला रे।
(तङ नम पर नङ ज़द मल: द् जुङ।)
कुई ओन दङ मी ओन।
ताङी ज्ञाफो मल: दु जुङ्।
ताङी ज्ञाफो कू खम् ज़ङ।
मी गी लेई ले चिन डा रे।
मी गी लेइ ले आ लाल रे।
मी गी लेइ ले कू खम् ज़ङ।
ताङी फोरोग तङ ला फुर।

मध्य में स्थित फोरोग भी गिरा दिया जाता है।

अब परात में रखे घी, एट, शाखल आदि का 'शागुण' कर के उस स्थान पर बैठे हुए लोग मिल-बांट कर प्रसाद स्वरूप खा लेते हैं। तदन्तर सभी को दिन का भोजन परोसा जाता है ।

इस प्रकार पहला फोरोग-प्रेषण रस्म सम्पन्न होता है। शाम को बारात दुल्हन को लेकर लौट आती है। साथ ही दूल्हन को पहुंचाने के लिए माता-पिता को छोड़कर अन्य सम्बन्धी तथा रिश्तेदार भी काफी संख्या में आ जाते हैं । यह संख्या आए हुए बारातियों से कुछ अधिक ही होती है। वर के घर में उन की भी परम्परानुसार खूब आवभगत की जाती है। रात्रि भोजन से पूर्व अलग कमरे में शिरदार, बग्ट्रिक्पा, दुल्हा, दुल्हन, उस के सभी निकट सम्बन्धी यथास्थान बैठ जाते हैं और फोरोग प्रेषण की ऊपर वर्णित पूरी प्रक्रिया की आवृति की जाती है। तदोपरान्त रात्रि का भोजन परोसा जाता है। इस प्रकार दूसरा फोरोग-प्रेषण रस्म सम्पन्न होता है।

पाद टिप्पणियां :-

1) काग प्रेषण गीत - मूल रूप, स्व० श्री कुन्ज़ङ., गांव वारी से प्राप्त

2) उत्तर, पश्चिम और दक्षिण के ध्यानी बुद्धों वाली पंक्तियां मूल गायक को याद नहीं थी। इन्हें स्व० श्री के० अंगरूप लाहुली जी ने गीत के पूर्व दिशा वाले प्रकरण में वर्णित 'शर दोरजे सेम्बा .....' वाली पंक्ति के आधार पर पुनजीर्वित किया जो कि उपरोक्त पाठ में कोष्ठकों में दिए गए हैं।

3) शागुण-एक मांगलिक रस्म जिस में प्रस्तुत सामग्री इष्ट का स्मरण कर अग्नि को अर्पित किया जाता है।

फोरोग-प्रेषण
(परिशोधित-पाठ)
के० अंगरूप लाहुली

ग्यल-व-रिगस्-ङा।

पाँच दिशाओं के पाँच ध्यानी बुद्ध

1. पूरबी बुद्ध वज्रसत्व = दो-जे-सेम्पा।
2. दक्खिनी बुद्ध रत्न संभव = रिन-छेन-जुङ-दन।
3. पच्छिमी बुद्ध अमिताभ = नङ-व-थ-यस्।
4. उत्तरीय बुद्ध अमोघ सिद्ध = दोन-योद-डुब-पा।
5. केन्द्रीय बुद्ध वैरोचन या ऊपरी बुद्ध = नम-पर-नङ-ज़द

प्रश्नोत्तर

पूरब दिशा -

ड.ई फोरोग तोड.-तोड. गड.-ला तोड.।
ड.ई फोरोग तोड.-तोड. शर-ला तोड.।
शर गी कद-छा चिडा रेद्।
शर गी कद-छा ग्यल-ला रेद्।
कु यिस् ञोन नम मिञोन।
शर गी ग्यल-पो कु-खमस् ज़ड.।
शर गी ग्यल-पो मल दु जुगस्।

शर दो-जे-सेम्पा मल दु जुगस्।
मी यी लस-ला चिडा रेद्।
मी यी लस-ला ग्यल-ला रेद्।
मी यी लस-ला कु-खमस् ज़ड.।
शर गी फारोग शर ला फुर।

दक्खिन दिशा -

ड.ई फोरोग तोड.-तोड. गड.-ला तोड.।
ड.ई फोरोग तोड.-तोड.-ल्हो-ला तोड.।
ल्हो यी कद-छा चिडा रेद्।
ल्हो यी कद-छा ग्यल-ला रेद्।
कु यिस् ञोन नम मिञोन ।
ल्हो यी ग्यल-पो कु-खमस् ज़ड.।
ल्हो यी ग्यल-पो मल दु जुगस्।

ल्हो रिन-छेन-जुड.-दन मल दु जुगस्।
मी यी लस-ला चिडा रेद्।
मी यी लस -ला ग्यल-ला रेद्।
मी यी लस-ला कु-खमस् ज़ड.।
ल्हो यी फोरोग ल्हो ला फुर।

पच्छिम दिशा -

ङई फोरोग तोड.-तोङ गड-ला तोङ।
ङई फोरोग तोङ-तोङ नुब-ला तोङ।
नुब की कद-छा चिडा रेद्।
नुब की कद-छा ग्यल ला रेद्।
कु यिस् ञोन नम मिञोन।
नुब की ग्यल-पो कु-खमस् ज़ङ।
नुब की ग्यल-पो मल दु जुगस्।

नुब नङ-व-थ-यस् मल दु जुगस्।
मी यी लस-ला चिडा रेद् ।
मी यी लस-ला ग्यल-ला रेद्।
मी यी लस-ला कु-खमस् जङ।
नुब की फोरोग नुब-ला फुर।

उत्तर दिशा -

ङई फोरोग तोङ तोङ गङ-ला तोङ ।
ङई फोरोग तोङ-तोङ जङ-ला तोड.।
जङ गी कद-छा चिडा रेद्।
जङ गी कद-छा ग्यल-ला रेद्।
कु यिस ञोन नम मिञोन।
जङ गी ग्यल-पो कु-खमस् ज़ङ।
जङ गी ग्यल-पो मल दु जुगस्।

जङ दोन-योद-डुब-पा मल दु जुगस्।
मी यी लस-ला चिडा रेद्।
मी यी लस-ला ग्यल-ला रेद्।
मी यी लस-ला कु-खमस् ज़ङ।
जङ गी फोरोग जङ ला फुर।

ऊपरी दिशा -

ङई फोरोग तोङ-तोङ गङ-ला तोङ।
ङई फोरोग तोङ-तोङ तेङ-ला तोङ।
तेङ गी कद-छा चिडा रेद्।
तेङ गी कद-छा ग्यल-ला रेद्।
कु यिस् ञोन नम मिञोन
तेड. गी ग्यल-पो कु-खमस् ज़ङ।
तेङ गी ग्यल-पो मल दु जुगस्।

तेङ नम-पर-नङ-ज़द मल दु जुगस्।
मी यी लस-ला चिडा रेद्।
मी यी लस-ला ग्यल-ला रेद्।
मी यी लस-ला कु-स्वमस् जंङ।
तेङ गी फोरोग तेङ-ला फुर।

अनुवाद –

काग प्रेषण

मेरा काग भेजूं तो किधर को भेजूं।
मेरा काग भेजूं तो पूरब को भेजूं।
पूरब का समाचार कैसा है?
पूरब का समाचार सम्यक् है?
आप सुने अथवा नहीं।
पूरब का राजा कुशल-क्षेम है।
पूरब का राजा स्वस्थित है।
पूर्बी वज़सत्व स्वस्थित है।
लोगों का कर्म कैसा है?
लोगों का कर्म सम्यक् है।
लोगों का कर्म कुशल है।
पूरब का काग पूरब को उड़ा।
मेरा काग भेजूं तो किधर को भेजूं।
मेरा काग भेजूं तो दक्खिन को भेजूं।
दक्खिन का समाचार कैसा है?
दक्खिन का समाचार सम्यक् है।
आप सुने अथवा नहीं।
दक्खिन का राजा कुशल-क्षेम है।
दक्खिन का राजा स्वस्थित है।
दक्खिनी रत्न संभव स्वस्थित है।
लोगों का कर्म कैसा है?
लोगों का कर्म सम्यक् है।
लोगों का कर्म कुशल है।
दक्खिन का काग दक्खिन को उड़ा।
मेरा काग भेजूं तो किधर को भेजूं।
मेरा काग भेजूं तो पच्छिम को भेजूं।
पच्छिम का समाचार कैसा है?
पच्छिम का समाचार सम्यक् है।
आप सुनें अथवा नहीं।
पच्छिम का राजा कुशल क्षेम है।
पच्छिम का राजा स्वस्थित है।
पच्छिमी अमिताभ स्वस्थित है
लोगों का कर्म कैसा है?
लोगों का कर्म सम्यक् है।
लोगों का कर्म कुशल है।
पच्छिम का काग पच्छिम को उड़ा।
मेरा काग भेजूं तो किधर को भेजूं।
मेरा काग भेजूं तो उत्तर को भेजूं।
उत्तर का समाचार कैसा है?
उत्तर का समाचार सम्यक् है।
आप सुनें अथवा नहीं।
उत्तर का राजा कुशल क्षेम है।
उत्तर का राजा स्वस्थित है।
उत्तरीय अमोघ सिद्ध स्वस्थित है।
लोगों का कर्म कैसा है।
लोगों का कर्म सम्यक है।
लोगों का कर्म कुशल है।
उत्तर का काग उत्तर को उड़ा।
मेरा काग भेजूं तो किधर को भेजूं।
मेरा काग भेजूं तो ऊपर को भेजूं।
ऊपर का समाचार कैसा है?
ऊपर का समाचार सम्यक् है।
आप सुनें अथवा नहीं।
ऊपर का राजा कुशल-क्षेम है।
ऊपर का राजा स्वस्थित है।
ऊपरीय वैरोचन स्वस्थित है।
लोगों का कर्म कैसा है?
लोगों का कर्म सम्यक् है।
लोगों का कर्म कुशल है।
ऊपर का काग ऊपर को उड़ा।

कुल्लू जनपद में नागों और अप्सराओं का वर्चस्व

– तेजराम नेगी
बबेली, कुल्लू ।

गतांक पाँच में आपने पढ़ा –

राय–आखाड़ा (वर्तमान बन्दरोल)) गांव के लगभग १२० घरों से भिक्षा की याचना करते–करते का सन्यासी–भिक्षु का निराश होकर इस गांव के अन्तिम छोर पर बने झोंपड़ी–नुमा घर के सामने जाकर फिर से अलख जगाना। भिक्षुक की आवाज सुनकर एक अधेड़ महिला का बाहर आकर भिक्षुक का समुचित आदर–सत्कार करना तथा इस महात्मा के आशीर्वाद से घर की बाँझ गाय द्वारा दूध देना तथा इसी गाय का दूध पीकर भिक्षुक का प्रसन्न होकर आशीर्वाद देना तथा कुछ ही दिनों में इस क्षेत्र विशेष में जलप्लावन सम्बन्धी भविष्यवाणी और चेतावनी देकर होशियार रहने के लिए कहना और इस के बचाव हेतु सुझाव देकर वहां से प्रस्थान करना।

'छटी–कड़ी'–

तत्कालीन समाज पर एक सूक्ष्म–दृष्टि :–

भविष्य के गर्भ में क्या रहस्य छिपा है, इस रहस्य की कुञ्जी केवल उस अन्तर्यामी के पास है जो इस सृष्टि के रचयिता हैं या तो वही बता सकता है जो जन्म से ही देवी –शक्तियों से सम्पन्न हो। आदिशक्ति नागराज वासुकिनाग के वरदान स्वरूप या प्रसाद रूप से प्राप्त एवं मानवी कोख से उत्पन्न कालीनाग में भी दैवी शक्ति की अपूर्व क्षमता विद्यमान थी। इसके अतरिक्त अपना शारीरिक स्वरूप बदलने की शक्ति भी विद्यमान थी। वे अपने क्षेत्र में कभी मानवी शरीर भिक्षुक के रूप में तथा कभी सरीसृप (सराळ) के भेस करते हुए तत्कालीन सामाजिक जनजीवन का अध्ययन भी करते रहते।

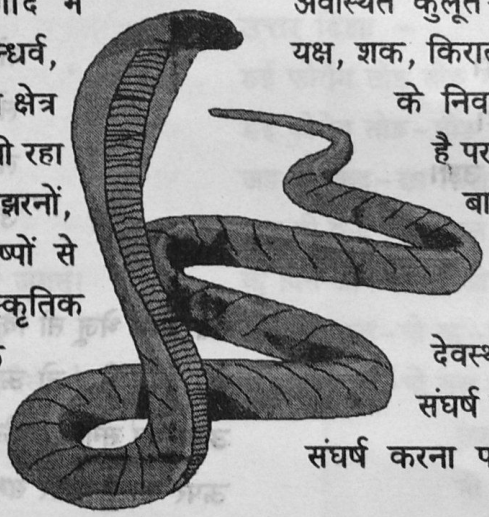

ऊँचे हिमालय की सुखद गोद में अवस्थित कुलूत–जनपद के विस्तृत क्षेत्र में रहने वाले देवी–देवता, मानव, नाग, अप्सरस, गन्धर्व, यक्ष, शक, किरात आदि जातियों से कालीनाग का बराबर सम्पर्क रहा है। विशेषकर, सर्वप्रथम इस क्षेत्र के निवासी यक्ष और शकों से कालीनाग और अन्य नागों का परस्पर संघर्षपूर्ण युग भी रहा है परन्तु मानव की निवासस्थली से दूर हिमालय के उच्च–शिखरों में बने सर–सरोवरों, झरनों, बावड़ियों, पर्वत की भीतरी कन्दराओं तथा हरियाली और विभिन्न प्रकार के पुष्पों से भरपूर ढलानदार क्षेत्रों में वास करने वाली अप्सराओं के साथ इस क्षेत्र की सांस्कृतिक गतिविधियों के विकास के लिए आपसी सहयोग के स्पष्ट प्रमाण भी प्रत्येक देवस्थलों पर उपलब्ध होते हैं। कालीनाग को किरात और शक आदि जातियों के संघर्ष के पश्चात् स्थानीय कुछ सीमित क्षेत्र के शासक राणे, ठाकुरों आदि से भी संघर्ष करना पड़ा जो अपनी निरीह जनता के साथ अमानवीय व्यवहार करते थे।

सम्राट जनमेजय की मृत्यु के पश्चात् भारतवर्ष कई छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित होता चला गया। इस देवभूमि में कोई भी ऐसा शक्तिशाली राजा नहीं रहा जो सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बान्धे रखता। विशेषकर उत्तराखण्ड के क्षेत्र तो बहुत ही छोटे–छोटे टुकड़ों में बंट गया। सम्पूर्ण हिमालयांचल क्षेत्र में राणे और ठाकुर अति सीमित क्षेत्र के अधिष्ठाता बन गए थे। सब ने अपनी–अपनी ढाई ईंट की मस्जिद खड़ी कर दी थी। यह स्थानीय शासक आपसी संघर्ष में ही अधिक समय व्यतीत करते थे, परन्तु अपनी प्रजा की भलाई के लिए कोई भी उल्लेखनीय कार्य कर पाने में सदैव पीछे ही रहते थे। साधारण जनता इनके निरंकुश शासन से पीड़ित और आतंकित रहती थी। कालीनाग को सारे क्षेत्र में भ्रमण करते हुए इन सब बातों का ज्ञान हो गया था और इन्होंने मन ही मन में संकल्प कर लिया था कि स्थानीय निरीह प्रजा की भलाई इन निरंकुश एवं निष्ठुर ठाकुरों और राणों को समाप्त करके ही सम्भव है।

इस प्रकार 'राय–अखाड़ा' के अभिमानी शासक ठाकुरों के द्वार से भिक्षा अर्थात पका पकाया भोजन न मिलने से भिक्षुरूपी कालीनाग ने इन्हें नष्ट करने का मन में संकल्प कर लिया। इस गांव की सबसे निर्धन महिला के घर के भोजन

से तृप्त होकर उन्हें अमरता का वरदान देकर तथा यहां से प्रस्थान करने से पहले चेतावनी देकर कहा था- "आज से कुछ दिनों के भीतर यह सारा क्षेत्र भयंकर बाढ़ से जलमग्न हो जाएगा परन्तु तुम्हारे घर को कोई हानि नहीं पहुंचेगी, तुम दोनों मां-बेटी सुरक्षित रहेंगी।" इतना कहकर उस भिक्षु ने वहां से विदा ली और एक अन्य ठाकुर के क्षेत्र की ओर प्रस्थान कर लिया।

भिक्षुक 'राय-अखाड़ा' (वर्तमान गांव-'बन्दरोल' एवं आस-पास के क्षेत्र) से चलकर पश्चिम दिशा की ओर स्थित 'व्यासर' नामक स्थान पर पहुंचे। वहां पर विस्तृत-क्षेत्र में फैला हुआ एक सरोवर दिखाई दिया। भिक्षुक ने यहां पहुंचने के लिए उत्तर दिशा की ओर एक ऊँचे स्थल के वन की ओर से आने वाले मार्ग का चुनाव किया हुआ था। वह सरोवर के पीछे एक टीले पर बैठ कर सरोवर और इसके मध्य में स्थित ठाकुरों के आवासीय स्थल और किलानुमा गढ़ी को बड़े ध्यान से देख रहा था। स्थानीय संस्कृति के निष्ठावान विद्वानों के कथनानुसार महाभारत महाकाव्य के रचयिता महर्षि वेदव्यास ने महाभारत-युद्ध के अन्तिम दिनों में इसी सरोवर के निकट अपना स्थाई निवास बनाया था। इसी कारण स्थानीय जनमानस में इस सरोवर का नाम 'व्यास-सर' प्रचलित हो गया। इसी स्थान से चल कर महर्षि वेदव्यास पाण्डवों से अज्ञातवास, वनवास एवं गुप्तवास के दिनों में बार-बार मिलकर उन्हें मार्गदर्शन देते रहे हैं। महर्षि वेदव्यास के अवसान के पश्चात् यह स्थान कुछ काल तक नितान्त जनशुन्य रहा। शकों और किरात आदि जातियां का भी इस स्थान पर कुछ काल तक प्रभुत्व रहा। तत्पश्चात् इस स्थान पर ठाकुरों और राणों का प्रभुत्व रहा। इनका इस स्थान पर प्रभुत्व कब से आरम्भ हुआ और कब इनका अन्त हुआ। इसके विषय में निश्चित समय का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

ऐसा कहा जाता है कि पालवंशी राजा विहंगमणिपाल के आगमन से पूर्व कुलूत जनपद में राणों और ठाकुरों की अपनी-अपनी ढाई ईंट की गढ़ियां बनी हुई थीं। जिस समय यह भिक्षुक इस स्थान पर पहुंचा तो राय-अखाड़ा और व्यासर नाम की ठकुराईयां और गढ़ियां बनी हुई थीं। यह चार-पांच मंज़िल ऊँचे दुर्गनुमा ठाकुर-द्वारे कहलाते थे। भिक्षुक ने देखा कि ठाकुरों की यह किलेनुमा गढ़ी एक ऊँचे टीले पर बनी हुई थी। इस पहाड़ी से ऊपर चढ़ने के लिए घुमावदार सीढ़ियां बनी हुई थीं तथा आवासीय घरों के पीछे तीन ओर सरोवर का घेरा बना हुआ था। किसी भी आक्रमणकारी को यहां आक्रमण करने से पहले सौ बार सोचना पड़ता था। कहने का तात्पर्य यह है कि दुश्मनों के लिए यह गढ़ी या गढ़ियां अजय-स्तम्भ बने हुए थे। इन गढ़ियों में सुरक्षित रहकर एक ही सैनिक दस-बीस आक्रमणकारी सैनिकों से टक्कर लेने में समर्थ होता था।

भिक्षुक धीरे-धीरे चलकर ठाकुर निवास तक पहुंचा और ठाकुर-द्वारे के आंगन में पहुंच कर एक अलख जगाई- "भिक्षाम् देहि"! भिक्षुक की आवाज़ सुनकर एक ठाकुर ने जो अपने आंगन में अपने कर्मचारियों के साथ किसी समस्या की मन्त्रणा में लगा हुआ था, अपने पास बुलाकर पूछा- "हे महात्मा! आप किस प्रकार की भिक्षा की अभिलाषा रखते हैं, यह मुझे शीघ्र ही बताने की कृपा करें।"

ठाकुर का आश्वासन पाकर भिक्षुक ने निवेदन किया- "हे अन्नदाता! मैं दो दिन से भूखा-प्यासा हूं, मैं बड़ी कठिनाई और दुःख झेलकर आपके द्वारे पहुंचा हूं। मुझे पूर्ण आशा है कि यहां से निराश होकर नहीं लौटूंगा।

भिक्षुक की याचना भरी प्रार्थना सुन कर ठाकुर ने कहा- "हे महात्मन्! आपने कहा कि मैं दो दिन से भूखा-प्यासा हूं, दो दिन में तो एक साधारण सा मनुष्य भी सम्पूर्ण कुलूत-जनपद में आसानी से घूम कर कई बार भिक्षा मांग-मांग कर अन्न का अम्बार लगा सकता है। क्या आपको इतने बड़े देश में कहीं भी भिक्षा नहीं मिली? मुझे लगता है कि या तो आप असत्य का सहारा ले रहे हैं या तो आपके मन में अन्य कोई रहस्यमयी बात छिपी हुई है। आप सच-सच बताने का कष्ट करें, अन्यथा हम आपको बान्धकर कारागार की अन्धेरी कोठरी में डाल देंगे। ऐसा मालूम होता है कि आप किसी ठाकुर या राणे के गुप्तचर हैं जो हमारे इस सुरक्षित क्षेत्र का भेद लेने आए हैं।"

ठाकुर के तीखे तेवर देखकर भिक्षुक ने फिर याचना भरी वाणी में कहा- "हे महाराज! आप इस क्षेत्र के स्वतन्त्र और निरंकुश राजा हैं, आप सब कुछ करने में समर्थ हैं। मैं वन में रहने वाला एक तपस्वी और अपनी साधना में मग्न रहने वाला एक साधक हूं। भिक्षा मांगना मेरी वृत्ति भी नहीं है। आप देख ही रहे हैं कि आजकल सब क्षेत्रों में अकाल पड़ा हुआ है। आपकी प्रजा बड़ी कठिनता से अपना जीवन व्यतीत कर रही है। हर स्थान पर त्राहि-त्राहि मची हुई है। अति निर्धन लोग अपनी पेट की ज्वाला बुझाने के लिए वन में कन्दमूल और फलों को ढूंढ-ढूंढ कर अपने परिवार का पालन-पोषण कर रहे हैं। कई स्थानों पर भूख का निदान न होने पर प्रत्येक परिवार में छोटे-छोटे बच्चे अल्पकाल मृत्यु के ग्रास बनते जा रहे हैं, फिर भी कई दयावान किसान दो मुट्ठी अनाज मुझे देने से पीछे नहीं हटे। मैं अनाज के दाने लेकर क्या करता। मुझे तो पकी-पकाई रोटी का टुकड़ा चाहिए था परन्तु वह टुकड़ा उपलब्ध होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य था। मेरे पास अपना खाना बनाने का कोई साधन नहीं है। मैं वन में कन्दमूल ही खाकर समय व्यतीत करने वाला साधक हूं। अब कन्दमूल भी वन में ढूंढने से भी प्राप्त नहीं होते। वन में कन्दमूल आदि तलाश करके मैं अपनी तथा अन्य भूख से पीड़ित परिवारों की सहायता करने का यत्न करता हूं। बहुत बार उपवास का ही सहारा लेना पड़ता है। अभी भी मैं आपके क्षेत्र के वन में कन्दमूल ढूंढते-ढूंढते आपके द्वार पर पहुंचा हूं। यदि आपको मेरी बात पर विश्वास नहीं है तो अपने किसी योग्य वैद्य को बुलाकर मेरे शरीर की परीक्षा लें, फिर आपको सच-झूठ का पता लग जाएगा। यदि तब भी आपको विश्वास न आए तो मैं यहां से प्रस्थान कर अन्य ठाकुर के यहां चला जाऊंगा। भगवान की इस सृष्टि में कोई न कोई, कभी न कभी, कहीं न कहीं भोजन खिलाने वाला दयावान मनुष्य तो मिल ही जाएगा और यदि मुझे कारागार में ही डालना चाहते हैं, तब भी मैं सहर्ष तैयार हूं , क्योंकि प्रथम बात तो यह है कि कारागार में भी तो आप मुझे भूखा-प्यासा नहीं रखेंगे, इतना तो मुझे विश्वास है और द्वितीय बात यह है कि भूख से पीड़ित होकर मरने वालों की दशा भी मुझसे नहीं देखी जाएगी। निसन्देह कारागार में रहने से मेरा स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रहेगा परन्तु कारागार के भय से मेरा परोपकार का अभियान कभी पीछे नहीं हटेगा। यही मेरी तपस्या है, लक्ष्य है और यही मेरी चिर साधना है।"

ठाकुर ने भिक्षुक की बातों को बड़े ध्यान से सुना और कहा- "हे परोपकारी महात्मा! आप अपने सीमित साधन से कब तक यह परोपकार का अभियान चलाते रहेंगे। मुझे आपका यह अभियान ढोंग ही लगता है। ऐसा लगता है कि आपने किसी अन्य ठाकुर या राणा का गुप्तचर का कार्य करने का अभियान छेड़ा हुआ है। आप सच-सच बताओ कि आप कौन हैं और कहां से आए हैं? नहीं तो आपको सचमुच ही कारागार में डाल कर, आपको कठोर यातनाएं देकर सारी सच बातें उगलवा देंगे। यह बात आप अच्छी तरह सोच लें।"

ठाकुर की धमकी भरी बातों से न घबराकर भिक्षुक ने पुनः ठाकुर से निवेदन किया- "हे अन्दाता! आप इस क्षेत्र के सर्व शक्तिमान राजा हैं। राजा का कर्त्तव्य है कि अपनी जान को हथेली में रखकर विपत्ति में पड़ी हुई अपनी प्रजा की रक्षा करना । आपके पास प्रचुर मात्रा में अन्न और धन है और किसी भी वस्तु की कमी नहीं है। आप दिल खोलकर इस अन्न के भण्डार को भोजन के रूप में पकाकर यथा सम्भव नंगी-भूखी अपनी प्रजा को तृप्त करने का यत्न करें। प्रजा के अस्तित्व पर ही आप राजा है, यदि प्रजा ही न रहे तो उस सूरत में कौन राजा होगा और कौन प्रजा? जीवित प्रजा आप का गुणगान करती हुई कभी नहीं थकेगी। आपका यह लोक भी सुधरेगा और परलोक भी सुधरेगा।"

भिक्षुक की बातों को सन्देह की दृष्टि से देखकर ठाकुर ने आक्रोश में भर कर कहा- "हे ढोंगी भिक्षु! तू मुझे अपना अन्न-धन लुटाने की शिक्षा देता है। तेरी बातों से मुझे यह पक्का विश्वास हो गया कि तू किसी अन्य राजा या किसी ठाकुर का भेदिया है और मुझे यह परोपकार का उपदेश देकर कंगाल बनाना चाहता है ताकि अन्य किसी राजा को मेरा राज्य जीतने में आसानी हो। आवेश में आकर ठाकुर ने अपने पास खड़े सैनिक को आज्ञा दी- इस धूर्त और पाखण्डी भिक्षु को अविलम्ब कारागार में डाल दो और इसे भूख से तड़पा-तड़पा कर तथा कठोर से कठोर यातनाएं देकर समाप्त कर दो। 'न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी।" क्रमशः .....

पटनी बोली में प्रचलित कुछ मुहावरे व कहावतें

–विकास

1. छेह् आंची– डर के मारे प्राण त्याग देना।
2. पुंजड. हूंसी तातोर – किसी को हद से ज़्यादा फूंक में रखना।
3. ऐरेग खुइरे क्रप:तेर क्वा – किसी अनहोनी घटना की आशंका होना।
4. बिल्ह मेरिंग पाड़ि ड्रवल्वि–किसी अनहोनी घटना की आशंका होना।
5. मेहज़ी जू–जू ला/रिनज़ाटु हुन्ज़िद–अतिथि के आने का संकेत।
6. तोरिंङ खाह थू ल्हवे घ्यङो मोदिंङ अपि–अपने ही मान–सम्मान को ठेस पहुंचाना।
7. चिच्ची उलेकच़दा–किसी को किसी के खिलाफ भड़काना।
8. ची ज़लहेतू घा मी–बहुत भोला होना।
9. मिगलोग खंड्रा दे–गुस्से का आना।
10. काह कंड्रा जोई–दिखावा करना।
11. बोल–बोल ल्हत्तोर–बुरी तरह से पीटना।
12. तुकच़ा बंङरेतू घा दु/यकतेतु घा दु–बहुत घुस्से वाला होना।
13. शीखोल शुचा – अति प्रसन्न होना।
14. च़ीह–च़ी शुचा–चौंकन्ना होना।
15. मेह थच़ते–बहुत गुस्सा होना।
16. चि पोउलह भासिऊ ठ्रो शुची तोतोन–बहुत दुखी प्रतीत होना।
17. प्राछेकसा इलि–अचानक डर जाना।
18. फ्योर–फ्योर शुची दू–घमण्डी प्रतीत होना।
19. कक्ट्रिमि तो खो–दूसरों को नीचा समझना/इन्सान नहीं समझना।
20. चाज़ा अन्ज:खो–किसी शैतानी शक्ति का असर होना।
21. टुनड्रिमी जोगे तोद्–सुन्दर दिखना।
22. ड्रेकरमों घा शुचि तोतोन ऐ–अभी–अभी सोकर उठा हुआ।
23. ऐनों मनङ शुचिए तो–बहुत घमण्डी होना।
24. यकचि़ खो–दूसरों को नीचा समझना।
25. मींह मचेसी खो–दूसरे को इंसान नहीं समझना।
26. फ्या रूठे ततन खो–अच्छी किस्मत होना।
27. तमाकू केत्तना–परीक्षा में असफल हो जाना।
28. चखुई तु ठ्रो लिकसा–बहुत ही झगड़ालू होना।
29. पुंज़ा च़शा मशता कां–चेतावनी देना।
30. ग्रह तङतो खो दी–किसी अनहोनी की आंशका होना।
31. अ: ञिकट्री–दूसरे को अहमियत नहीं देना।
32. खास डोन–डोन सी–बेकार घूमते–फिरते रहना।
33. गड़ङ पिचे केट्रीमी जोगे तोतोन–बहुत शरारती होना।
34. मींऊ भाशे तो में–समझाना।
35. च़ोन्ज़: रिङ र्हग छुचे तोऊ–बात को न भूलने की सलाह देना।
36. तां मुन्जे कगटे हाऊश्रेक्पी लेकी तोइरे–कोई अनहानी घटना का हो जाना।
37. दोई क: लङेह हपोतो–बहुत चालाक होना।
38. टोटू पुन्ज़रिङ बङज़ाड़–बहुत ही झगडडालू होना।
39. फुक्टुंग पिचे केट्रीमी जोगे तोतोन–बहुत ही शरारती होना।
40. क्वची फुक: लहज़ा आह खोऊं दोऊ–बहुत ही बातूनी होना।
41. फिल्ड्राड़–मनघढ़त बातें करने वाला।

"बुढ़ापा अभिशाप नहीं, दिव्य-नव्य जीवन की तैयारी"

वृद्धावस्था जीवन का अंतिम परन्तु महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। यह वर्तमान जीवन की संचित निधि है और अगले जीवन की तैयारी है। जीवन भर के समस्त अनुभव यहां एकाकार हो जाते हैं। कड़वी-मीठी स्मृतियाँ पल-पल कचोटती रहती हैं। यह अपने विषय में गंभीर चिन्तन-मनन की अवस्था है। यदि अच्छा करने की चाहत को पूरा नहीं किया जा सका या किया तो और अच्छा करने के लिए अगले जीवन की अभीप्सा करनी चाहिए। वैयक्तिक समस्या और पारिवारिक प्रयोजनों से उभरकर प्रभु समर्पित भावी जीवन की तैयारी की यह दिव्य अवस्था है। इस महत्त्वपूर्ण समय को किसी की अपेक्षा-उपेक्षा में नष्ट नहीं करना चाहिए। सद्भावना सद्व्यवहार से बुढ़ापे की समस्या को नई दिशा में बदला जा सकता है।

जीवन का पूर्वार्द्ध भौतिक-संपत्ति अर्जन के लिए पर्याप्त है। उत्तरार्द्ध को वानप्रस्थ एवं सन्यास के रूप में समाज के लिए समर्पित करना चाहिए। यह भारतीय संस्कृति की सुनिश्चित एवं दिव्य दैवीय परम्परा है इसमें गहरा मनोविज्ञान है, जिसमें समस्त समस्याओं का सार्थक समाधान समाहित है।

आर्य-परंपरा को भुला देने से ही अगणित समस्याएं सुरसा के समान मुंह खोले खड़ी हो गई हैं। संयुक्त परिवार के विघटन, उपभोक्तावादी आर्थिक दृष्टिकोण, युवा पीढ़ी की स्वार्थपरक सोच के कारण वृद्धों को समाज और परिवार के हाशिए पर ढकेल दिया गया है। समाज और परिवार के लिए वे अवांछित, अनुपयोगी और बोझ समझे जाने लगे हैं। एक ओर बुढ़ापा दूसरी ओर उपेक्षा के कारण भी उनकी स्वयं की रही-सही ज़िन्दगी में घुन लग गया है। इस प्रकार एक तो जर्जर बुढ़ापा और ऊपर से उस पर दोहरी मार से समस्या और भी त्रासदीपूर्ण हो गई है।

वृद्धों पर पारिवारिक दुर्व्यवहार तथा उनकी स्वयं की नकारात्मक सोच से उनकी मानसिक और शारीरिक समस्याओं में भारी वृद्धि हुई है। वृद्धावस्था में ऐसे भी नेत्र संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। इनके अलावा तंत्रिका तंत्र? हृदय, श्वसन, त्वचा श्रवण और मूत्र संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। शरीर मनोविज्ञानयों के अनुसार बढ़ती उम्र का असर शरीर के विभिन्न तंत्रों पर अलग-अलग पड़ता है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ हृदय की प्रतिरोधक क्षमता कम होती जाती है। 65 की उम्र के बाद होने वाली मौतों मे से 50 प्रतिशत मौत दिल की बीमारियों के कारण होती है। परीक्षणों से पाया गया कि हृदय की ध ड़कन बढ़ती उम्र में कम तो नहीं होती है, परन्तु प्रत्येक धड़कन के साथ हृदय की पेशियाँ उतनी शीघ्रता से नहीं सिकुड़ती हैं। अत: उम्र बढ़ने के साथ हृदय की कार्यक्षमता में भी कमी आने लगती है। सामान्यत: 90 वर्ष की उम्र तक हृदय द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों में भेजे जाने वाले रक्त की मात्रा 50 प्रतिशत की कमी आ जाती है। बढ़ती उम्र के साथ रुधिर वाहिकाओं का लचीलापन भी कम हो जाता है। इससे अधिक प्रवाह के प्रति वाहिकाओं का प्रतिरोध बढ़ जाता है और रक्तचाप में वृद्धि हो जाती है।

बुढ़ापे में हड्डियों में कैल्शियम की मात्रा धीरे-धीरे क्षीण होने लगीत है। परिणाम स्वरूप वे अधिक नाजुक हो जाती हैं और उनके जल्दी टूटने की संभावना बनी रहती है।

इस उम्र में हड्डी के जुड़ने की प्रक्रिया भी कमज़ोर हो जाती है। इसके अलावा बढ़ती उम्र के साथ जोड़ों की गतिशीलता भी कम हो जाती है और संधिवात की घटना बढ़ जाती है। यों तो तंत्रिका तंत्र में कोई खास परिवर्तन दिखाई नहीं देता है, परन्तु मस्तिष्क के स्नायुओं के घटने से याद्दाश्त कमज़ोर पड़ने लगती है। न्यूरोलॉजिस्टों के अनुसार साठ वर्ष की उम्र में मस्तिष्क के न्यूरॉन घटते-घटते आधे रह जाते हैं। चूँकि ये न्यूरॉन ही संज्ञान संस्थान के लिए ज़िम्मेवार होते हैं। अत: इनके ह्रास से स्मृति, बुद्धि आदि में कमी आना स्वाभाविक है।

वृद्धावस्था में मानसिक और शारीरिक रोग एक-दूसरे से जुड़े हुए रहते हैं। एक का प्रभाव दूसरे पर पड़े बिना नहीं रहता है। एक शोध अध्ययन के निष्कर्ष से पता चलता है कि वृद्धों के प्रति दुर्व्यवहार और उनकी असहाय-असुरक्षित मानसिकता के कारण इनमें गहरी मनोव्यथा पैदा हो जाती है। यह मनो विकृति 60 से 70 वर्ष की उम्र में 71.5 प्रतिशत, 70 से 80 की उम्र में 124 प्रतिशत और 80 से अधिक आयु वर्ग वालों में 155 प्रतिशत होती है।

मनोविज्ञान विभाग की एक शोध

छात्रा ने वृद्धों पर मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है। इस अध्ययन का निष्कर्ष भी कुछ इस तरह की व्यथा-कथा, बयान करता है। इस अध्ययन के अनुसार यहां पर अधिकतर वृद्ध अपने पारिवारिक दुर्व्यवहार के कारण संतप्त और संत्रस्त हैं। जिस परिवार को पालने और बड़ा, विकसित करने में सारी उम्र खप जाती है, समय और धन सब कुछ लग जाता है, वही जब कुठाराघात करता है तो पीड़ा असहनीय हो जाती है। इसके पीछे अपेक्षाओं का अंतहीन दवाब भी रहता है, जिसके पूरा न होने पर वैचारिक और भावनात्मक आघात लगते है। मानसिक चुभन असह्य होती है और उससे भी पीड़ादायक होती है-भावनात्मक टूटन। जो अपने थे, वही पराये लगते हैं, उनकी उपेक्षा से संवेदना के सारे तार टूट जाते हैं और पैदा होती है-मानसिक ग्रंथियां, असुरक्षा का भाव और अंत में स्वयं को ही मिटा देने की, आत्महत्या की वृत्ति।

वृद्धों की अपनी स्वयं की मानसिक समस्याएं भी कम नहीं होती हैं। अतीत की अतृप्त लालसाएं, कामनाएं खाली समय में उभर कर सामने आ जाती हैं, इन मानसिक विकारों का वेग बड़ा ही तीव्र होता है। इस आवेग को वृद्धों का जर्जर-दुर्बल स्नायुतंत्र झेल नहीं पाता है, जिससे गंभीर मनोरोग पैदा हो जाते हैं। वे अपनी अतृप्ति के अनुभव से जलते रहते हैं । यह अतृप्ति कई प्रकार की होती है। मन कुछ नया स्वाद पाने को मचल उठता है परन्तु पाचन संस्थान अनुमति नहीं देता है। दबी-छिपी कामनाएं भड़क उठती हैं, पर शरीर साथ नहीं दे पाता है। मन और शारीरिक इन्द्रियों के बीच इस धमासान में बुढ़ापा नारकीय यातना के समान लगने लगते हैं।

बुढ़ापे में पद, प्रतिष्ठा, सम्मान का अधिकार एवं अहंकार भी चला जाता है। कल तक जिनको आदेश दिया करते थे, वही आज उलटा अधिकार जताने लगते है।। इससे उनके अहंकार पर चोट पड़ती है और यह चोटिल अहं गुस्सा, उन्माद, आवेग के रूप में फूट पड़ता है तथा अपना और दूसरों का नुक्सान करता है। पारिवारिक वातावरण तनावपूर्ण हो जाता है। तथा आक्षेप-कटाक्ष का अंतहीन सिलसिला चल पड़ता है।

मनोविज्ञानी मानते हैं कि मानसिक रोग के अलावा वृद्धों को कांउसलिंग की सर्वाधिक आवश्यकता है। उन्हें आर्थिक भौतिक सहायता से अधिक भावनात्मक पनाह की ज़रुरत है। भावनाएं ही उनकी दुखते रग को राहत दे सकते हैं; दर्द से बिलखते मानसिक घावों में मरहमपट्टी कर सकते हैं। प्राच्य मनोविद् इस तथ्य से अवगत थे, इसी कारण उन्होंने वानप्रस्थ सन्यास आश्रमों की व्यवस्था की थी। इन आश्रमों का आधार बड़ा ही मनोवैज्ञानिक है। इन आश्रमों की ज्ञान-साधना, योगाभ्यास की तपसाधना और लोक-मंगल की सेवा-साधना, ये तीनों अमृतमयी देव सरिताएं मिल का त्रिवेणी संगम का प्रयोजन पूरा करती है। अपने बारे में जानने समझने की अतृप्ति ज्ञान साधना से पूरी हो जाती है।

वस्तुत: हम कौन हैं? हमें क्या करना चाहिए? आदि प्रश्नों का आंशिक समाधान स्वाध्याय आदि ज्ञान-साधन से मिल जाता है। अपने बारे में बहुत सारे भ्रम भटकाव के दूर होने पर मानसिक ग्रन्थियां नहीं पनपती हैं। आत्मा पर चढ़े हुए कषाय-कल्मष और मल आवरण एवं विक्षेपों का निवारण निराकरण तप साधना रूपी अग्नि संस्कार द्वारा संभव होता है। इस संस्कार से औरों से आशा अपेक्षा और अहंकार गलते-ढलते हैं ये मनोरोग की जड़ें हैं। इनके गलते ही आंतरिक प्रखरता निखरने लगती है। आत्मबल के जाग्रत होने पर जर्जर बुढ़ापा समाप्त हो जाता है और इसी उम्र में प्रचंड तेजस्विता से जवानी जैसा व्यक्तित्व दमक उठाता है। इससे अपने अन्दर की दबी-कुचली संवेदना-भावना परिष्कृत परिमार्जित होकर सेवा-साधना में लग जाती है। फिर जनमानस में उत्कृष्टता बोने, उगाने और बढ़ाने का क्रम चल पड़ता है। वैचारिक और भावनात्मक ऊर्जा सेवा-साधना में प्रवाहित होने लगती है। इस ऊर्जा की समुचित अभिव्यक्ति के अभाव में ही मनोग्रंथियां बनती हैं। अत: सेवा एवं परमार्थपरायण कार्यों में लगकर सारी ग्रंथियाँ समाप्त हो जाती हैं और अंतस में आनन्द का अनुभव होने लगता है।

इस प्रकार ढलती आयु में उम्र के इस पड़ाव में भी नए स्तर का आनन्द उठाया जा सकता है। आध्यात्मिक और परमार्थिक गतिविधियां अपना कर जीवन के उत्तरार्द्ध को इतना मृदुल और सरल बनाया जा सकता है, मानो नवीन जन्म ग्रहण किया है। ऐसी दशा में अतीत को खोने का पश्चाताप नहीं करना पड़ता, बल्कि उससे अधिक आनन्दमयी उपलब्धियाँ प्राप्त करने का सुकून रहता है। इस आधार पर एक नए जन्म की परिपूर्ण तैयारी हो जाती है। परमार्थ की पुण्य पूंजी संग्रह करने के लिए, अगले जन्म में ऊंची स्थिति पाने के लिए उत्कण्ठा जाग्रत होती है और अधिक गंभीरतापूर्वक दिव्य जीवन की गतिविधियों को अपनाया जा सकता है। अत: बुढ़ापा समस्याओं को नहीं, वरन् दिव्य वरदान लेकर आता है, जिसका सदुपयोग करना चाहिए।

नवंग तन्ज़िन खलेपा
सेऊबाग (कुल्लू)

लाहुल में पोली जल भण्डारण की सम्भावनाएं

–बलवीर सिंह यर्की

उद्देश्य: – गांवों के आस–पास उपलब्ध बंजर भूमि में विभिन्न दूरी पर भूमि की उपलब्धता एवं उपयुक्तता को देखते हुए विभिन्न क्षमता एवं आकार के बहुत कम लागत से तैयार होने वाले पोली जल भण्डार/जल संग्रहण टैंकों की शृंखला तैयार करना तथा इन्हें एक दूसरे से जोड़ कर विशाल जल भण्डारण प्रणाली स्थापित करना। इसमें जब सिंचाई की आवश्यकता न हो उस समय किसी भी प्रकार से उपलब्ध पानी का संग्रहण व भण्डारण कर आवश्यकता के समय किसानों को सिंचाई के लिए अतिरिक्त पानी उपलब्ध कराना।

पोली जल भण्डारण टैंकों की विशेषताएं :

1. यह बहुत कम लागत से तैयार हो सकती है।
2. यह बहुत कम समय में तैयार हो सकता है।
3. रख–रखाव बहुत आसान है।
4. भूमि की उपलब्धता के अनुसार किसी भी आकार व क्षमता का बन सकता है।
5. कोई विशेष तकनीकी सहायता की आवश्यकता नहीं है। किसान स्वयं मामूली मार्गदर्शन से इन टैंकों का निर्माण कर सकते हैं।

निर्माण सामग्री :

1. टैंक की क्षमता एवं आकार के अनुसार मल्टी लेयर पोलीशीट।
2. जल निकासी के लिए अपेक्षित मोटाई का जी० आई० पाईप जिस के एक छोर पर गेट बल्व फिट होना चाहिए। यह पाईप 2", 2½", 3", 4" व 6" मोटाई का हो सकता है।

निर्माण विधि :

किसी प्रकार की समतल भूमि पर उपलब्ध भूखण्ड में एक मीटर गहराई तक मिट्टी की खुदाई की जाती है तथा खुदाई के समय ही तल के साथ पानी के निकासी के लिए अपेक्षित मोटाई का जी० आई० पाईप उस दिशा में लगाया जाए जिस दिशा से पानी खेतों को ले जाना है। यह पाईप बाहर की ओर हल्का सा झुकाव लिए हों तथा बाहरी छोर पर गेट बल्व फिट होना चाहिए। निर्माण के समय इस पाईप के सिरों को बोरी या पोलीशीट से अच्छी तरह से बन्द करना चाहिए ताकि काम के दौरान पाईप बन्द न हो जाए। खुदाई से निकले मलवे को प्रस्तावित जल भण्डारण टैंक के चारों ओर इस प्रकार ढेर लगाया जाता है जिससे यह दीवार का आकार ले सके। यह दीवार खुदाई से निकले मलवे से एक मीटर चौड़ा व एक मीटर ऊँचा बन जाता है। इस प्रकार टैंक की गहराई एक मीटर खुदाई से व एक मीटर मलवे के दीवार से कुल दो मीटर हो जाता है। अगर टैंक का आकार बड़ा हो तो खुदाई कम करनी पड़ेगी क्योंकि कम खुदाई से ही इतना मलवा निकल जाता है जिससे टैंक के चारों ओर काफी चौड़ा और एक मीटर से अधिक ऊँची दीवार बन जाती है। टैंक का दीवार एकदम सीधा न होकर ढलानदार होना चाहिए। टैंक के दीवार व तल को इस प्रकार समतल करना चाहिए, जिससे कोई नुकीला पत्थर का टुकड़ा या अन्य कठोर पदार्थ बाहर को उभरा न रह जाए। समतल करने के बाद यदि आवश्यकता हो तो छाने हुए मिट्टी की लिपाई करनी चाहिए ताकि तल व दीवार एकदम समतल व साफ हो जाए। इस के तुरन्त बाद टैंक में मल्टी लेयर पोलीशीट बिछाया जाए और टैंक प्रयोग के लिए तैयार हो जाता है।

यह टैंक दस हज़ार लीटर से दस लाख लीटर क्षमता का बन सकता है। यदि आवश्यकता हो तो इससे अधिक या कम क्षमता का भी टैंक बनाया जा सकता है। लेकिन बहुत अधिक क्षमता के टैंकों में शीट बिछाना कठिन होता है और कम क्षमता के टैंकों की लागत बढ़ जाती है। इसलिए मध्यम आकार के टैंक ज़्यादा उपयोगी एवं सुविधाजनक होता है।

निर्माण स्थान का चयन :

टैंक का निर्माण उस स्थान पर करना चाहिए जहां उपलब्ध जल स्रोतों का पानी आसानी से टैंक में आ सके। जहां तक सम्भव हो समतल भूखण्ड पर ही टैंक बनाना चाहिए। अगर हल्का सा ढलान हो तो भी उस स्थान पर टैंक बनाया जा सकता है। लेकिन इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि ढलान के तरफ मलवे का ढेर इस प्रकार लगाया जाए जिससे टैंक बन जाने पर टैंक, भण्डारण किये पानी का दबाव बर्दाश्त कर सके। अगर प्राकृतिक तौर पर तालाब के आकार का भूखण्ड उपलब्ध हो सके तो अधिक उपयुक्त रहेगा, क्योंकि इस प्रकार का भूखण्ड थोड़ी सी सुधार के बाद पोलीशीट बिछाने योग्य बन जाता है तथा टैंक की लागत बहुत घट जाती है।

जहां तक सम्भव हो पत्थरीला व चट्टानी भूखण्डों पर टैंक का निर्माण नहीं करना चाहिए क्योंकि पत्थर व चट्टान हटाने में अधिक खर्चा आता हैं इससे टैंक की लागत बढ़ जाती है।

रखररखाव :

इन टैंकों को रखरखाव की विशेष आवश्यकता नहीं होती है। केवल इतना ध्यान रखा जाए कि कोई शरारती तत्त्व जानबूझ कर पोली शीट को क्षतिग्रस्त न करें। सामान्यत: यह शीट लम्बे समय तक प्रयोग के योग्य रहता है। इन टैंकों की सुरक्षा के लिए टैंक के चारों ओर कांटेदार तारों का बाड़ लगाया जा सकता है।

लागत :

किसी भी योजना का सबसे महत्वपूर्ण पहलू योजना की लागत होती है। इस योजना में अविश्वसनीय सीमा से भी कम लागत आती है। अगर टैंक पाँच लाख लीटर या इससे अधिक क्षमता का बनाना है तो लागत दस ग्यारह पैसे प्रति लीटर पड़ता है। ज्यों-ज्यों टैंक का आकार घटाता जाता है, तो प्रति लीटर लागत बढ़ती जाती है। 50,000 लीटर तक पहुंचते-पहुंचते लागत बीस पैसे प्रति लीटर हो जाता है। सामान्य परिस्थिति में पचास हज़ार लीटर क्षमता का टैंक दस हज़ार रुपये में तथा एक लाख लीटर क्षमता का टैंक सोलह हज़ार रुपये में बन सकता है। मोटे तौर पर पचास हज़ार लीटर से पाँच लाख लीटर क्षमता का टैंक बीस से दस पैसे प्रति लीटर की लागत से बन सकता है। क्योंकि लाहुल में मज़दूरी दर अधिक है इसलिए मज़दूरी अंश में कुछ वृद्धि हो सकती है। विभिन्न क्षमता के टैंकों का अनुमानित लागत विवरण अनुलग्नक (क) में दिया है।

लाभ :

1. लाहुल में अधिकतर क्षेत्रों में मई मास में बिजाई होती है। सामान्यत: 15 मई तक प्राकृतिक तौर पर भूमि में नमी रहती है। इसलिए किसानों को 15 मई तक भूमि की सिंचाई करने की आवश्यकता नहीं होती है। बर्फ पिघलने के साथ विभिन्न नालों व चश्मों में पानी का बहाव बढ़ जाता है तथा सिंचाई आरम्भ होने तक पानी नालों में बहता हुआ बेकार चला जाता है। इस अवधि में बेकार बहने वाले पानी का इन जल भण्डारण टैंकों में भण्डारण हो सकता है। इससे सिंचाई आरम्भ होने पर लम्बे समय तक किसानों की पानी की आवश्यकता पूर्ण हो सकती है।
2. प्राय: जल भण्डारण टैंक वहां बनता है जहां मशीनरी द्वारा निर्माण सामग्री को निर्माण स्थल तक पहुंचाना सम्भव नहीं होता है। इसलिए निर्माण सामग्री को निर्माण स्थल तक मज़दूरों व खच्चरों द्वारा ले जाना पड़ता है। परम्परागत जल भण्डारण टैंकों में निर्माण सामग्री को निर्माण स्थल तक ले जाने में बहुत समय लगता है तथा भारी लागत आती है। आमतौर पर निर्माण लागत का बड़ा भाग निर्माण सामग्री ढुलाई का होता है। लेकिन पोली जल भण्डारण टैंकों में निर्माण के नाम पर केवल एक पोलीशीट व जल निकासी के लिए एक पाईप को निर्माण स्थल तक पहुंचाना होता है। जिसे दो-तीन मज़दूर आसानी से पहुंचा सकते हैं। जबकि परम्परागत टैंकों के निर्माण में काफी संख्या में कुशल मिस्त्रियों की आवश्यकता होती है। इसमें पोली टैंकों के मुकाबले कई बार सौ गुणा अधिक तक लागत होती है। परम्परागत टैंकों के निर्माण में काफी संख्या में कुशल मिस्त्रियों की आवश्यकता होती है तथा लगातार कुशल अभियन्ताओं का मार्गदर्शन व निरीक्षण आवश्यक होता है जबकि पोली टैंकों के निर्माण में किसी कुशल मिस्त्री की आवश्यकता नहीं होती है तथा अभियन्ताओं द्वारा बार-बार मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं होती है। गांववासी स्वयं मामूली से मार्गदर्शन के उपरान्त कुशलता से पोली जल भण्डारण टैंकों का निर्माण कर सकते हैं।
3. विकास खण्ड लाहुल में वर्तमान जल वितरण प्रणाली में हर एक को कोटे के अनुसार बारी-बारी से पानी मिलता है। इस प्रकार कुछ की दिन को तथा कुछ की रात को बारी आती है। जिसके हिस्से में रात को पानी आता है वह कभी भी पानी का लाभदायक उपयोग नहीं कर पाता है। इन टैंकों के निर्माण होने पर किसान रात के समय पानी का भण्डारण कर दिन को सिंचाई कर सकता है। इससे न केवल किसानों को सुविधा होगी बल्कि पानी का अच्छा उपयोग भी हो पाएगा।
4. वर्तमान में किसानों को कूहलों में चल रहे पानी के बहाव (मात्रा) को ही प्रयोग करना पड़ता है। बहाव कम होने पर सिंचाई में विलम्ब होती है तथा कम क्षेत्र की सिंचाई ही हो पाती है और अगर बहाव अधिक हो तो किसान को पानी सम्भालना कठिन होता है। भण्डारण व्यवस्था होने पर किसान इन टैंकों से अपनी आवश्यकतानुसार पानी की मात्रा प्राप्त कर सकेगा।
5. बारी आने पर किसान को पानी का प्रयोग करना ही पड़ता है चाहे उसे आवश्यकता हो या न हो। कई बार जब वर्षा हो रही होती है तो उस दिन जिसकी बारी होती है वह अपने ज़मीन में आवश्यकता न होने पर भी पानी देता है या फिर पानी को नालों में बहा देता है। अच्छी वर्षा होने पर काफी दिनों तक सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। लेकिन जब बारी आ जाती है तब किसान को आवश्यकता न होने पर भी सिंचाई करनी पड़ती है। भण्डारण व्यवस्था होने पर, किसान जब पानी की आवश्यकता न हो, उस समय पानी का भण्डारण कर सकता है और जब आवश्यकता हो तभी पानी का प्रयोग कर अधिक लाभ उठा सकता है।
6. टैंकों के स्थापना से इस पानी को स्प्रिंकलर सिस्टम से जोड़ कर और अधिक सुविधा प्राप्त किया जा सकता है तथा प्रभावकारी ढंग से अधिक क्षेत्र की सिंचाई हो सकती है।
7. इन टैंको का निर्माण सामुदायिक व व्यक्तिगत रूप से हो सकता है। किसान स्वयं भी आवश्यकतानुसार अपनी ज़मीन में इस प्रकार के टैंको का निर्माण कर सकते हैं। व्यक्तिगत टैंकों के निर्माण पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। क्योंकि किसान अपने निजी टैंक में भण्डार किए

पानी का अपनी सुविधा एवं आवश्यकता अनुसार प्रयोग के लिए स्वतन्त्र होगा। इन टैंकों में जल भण्डारण कर किसान केवल आवश्यकता के समय ही पानी का प्रयोग कर प्रभावकारी ढंग से अधिक क्षेत्र का सिंचाई कर बहुत अच्छा परिणाम व लाभ प्राप्त कर सकता है।

वित्तीय व्यवस्था :

1. विभिन्न विभागों की योजनाओं में विशेष प्रावधान किया जा सकता है। जनजातीय उपयोजना से किसानों के लिए एक सीमा तक अनुदान की व्यवस्था की जा सकती है।
2. मरूस्थल विकास परियोजना में विशेष प्रावधान किया जा सकता है।
3. कुल्लू में नवार्ड के सहयोग से किसानों को स्वयं सहायता समूह बनाकर इस प्रकार के सिंचाई योजनाओं के लिए सीधे बैंक से ऋण लेने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। प्राय: सरकारी सहायता प्राप्त करने में काफी समय लग जाता है और किसान का बहुमूल्य सीज़न निकल जाता है। बैंक से ऋण लेकर किसान स्वयं इन योजनाओं को तुरन्त कार्यान्वित कर चल रहे सीज़न का लाभ उठा सकते हैं तथा बैंक का किश्त भी आसानी से लौटा सकते हैं।
4. जो समूह या किसान ऋण लेने से हिचकिचा रहें हैं उन्हें विकास में जन सहयोग कार्यक्रम के अन्तर्गत जन सहयोग अंश जुटाने के लिए प्रेरित किया जा रहा है तथा विकास में जन सहयोग कार्यक्रम के अन्तर्गत लाभान्वित करने का प्रयास हो रहा है।

कार्यवाही :

लाहुल में पानी का प्रयोग करने वाले प्रयोक्ता समूह बहुत प्रभावशाली ढंग से संगठित्त हैं तथा अनुशासित है। इसी कारण पानी के वितरण व स्रोतों के दोहन को लेकर बहुत कम विवाद उठता है। आवश्यकता केवल गांव वासियों व इन प्रयोक्ता समूहों को इस योजना के बारे जानकारी देने की है। प्रयोग के रूप में कुछ विकट समस्या वाले गांवों में पोली जल भण्डारण टैंकों का स्थापना कर आम जनता में इसे प्रदर्शित किया जा सकता है। अनुभव से पाया गया कि जिन्होंने भी इन जल भण्डारण टैंकों की स्वयं देखा है उन्होंने बहुत पसन्द किया तथा इसकी उपयोगिता को जाना है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि जानकारी होने पर लोग स्वयं योजना लेकर प्रशासन के सम्मुख आएंगे तथा इस योजना से कई गांवों के पानी की समस्या का स्थाई हल निकाल सकता है।

अनुलग्नक – (क)

विभिन्न क्षमता के पोलीटैंक निर्माण के लिये अनुमानित लागत का विवरण

क्रमांक	पोली टैंक का आकार (मी० में)			टैंक की जल भण्डारण क्षमता	कितनी पोलीशीट की आवश्यकता होगी। प्रतिवर्ग ली० में	पोलीशीट का प्रचलित बाज़ार दर प्रतिवर्ग मी० मी० में	टैंक के लिये प्रयुक्त पोलीशीट	भूमि खुदाई टैंक का आकार देने का मूल्य	अप्रत्याशित व्यय के लिए पर व्यय	टैंक निर्माण पर कुल लागत प्रावधान	टैंक निर्माण पर प्रति लीटर लागत रूपयों में
	ल०	चौ०	ऊँ०								
1.	2	2	2	8000	49	70%	3430	600	1000	5030	0.63
2.	2.5	2	2	10000	56	70%	3920	750	1000	5670	0.57
3.	3	2	2	12000	56	70%	3920	900	1000	5820	0.49
4.	5	2	2	20000	70	70%	4900	1500	1000	7400	0.37
5.	4	4	2	32000	81	70%	5670	2400	1000	9070	0.28
6.	10	2	2	40000	105	70%	7350	3000	1500	9850	0.29
7.	5	4	2	40000	90	70%	6300	3000	1500	10800	0.27
8.	5	5	2	50000	100	70%	7000	3750	1500	12250	0.25
9.	10	4	2	80000	135	70%	9450	6000	1500	16950	0.21
10.	10	5	2	100000	150	70%	10500	7500	1500	19560	0.20
11.	10	10	2	200000	225	70%	15750	51000	2000	32750	0.16
12.	15	10	2	300000	300	70%	21000	22500	3000	46500	0.16
13.	20	10	2	400000	375	70%	26250	30000	4000	60250	0.15
14.	25	10	2	500000	450	70%	31500	37500	5000	74000	0.15
15.	20	15	2	600000	500	70%	35000	45000	6000	86000	0.14

बलवीर सिंह यर्की
खण्ड विकास अधिकारी,
कुल्लू, ज़िला कुल्लू

बौद्ध कला : उत्पत्ति और विकास

जसवंत कुमार शर्मा (इतिहास विभाग)
पंजाब विश्व विद्यालय, चण्ड़ीगढ़

बौद्ध धर्म प्रथम वैश्विक धर्म है। इसे विभिन्न राष्ट्रों द्वारा इसकी उन्मत्त उत्साह के कारण नहीं बल्कि इसे इसके शीतल भाव, आपसी मेलजोल और अहिंसा के प्रति सुदृढ़ विश्वास के कारण अपनाया गया। भौगोलिक रुकावटों और क्षेत्रीय अलगाव के होने के बावजूद यह आत्मिक अनुभूति की भीतरी कता को बनाने में सफल हुई जिसके फलस्वरूप यह विचार व कला में एकमतता लाने में सफल हुई। बौद्ध कला के कार्य में निरन्तरता ने इसमें जड़ता पुरातनता और अविकास को पनपने नहीं दिया। हालांकि, दूसरी संस्कृति में पैठ बनाने के विशाल कार्य और इस प्रकार उन्हें प्रभावित या अत्यधिक बदलने का कार्य अच्छे ज्ञान और ऊँचे नैतिक नियमों की वजह से सम्भव हो पाया। रूचिकर बात यह है कि बौद्ध धर्म में पांच विद्याएं हैं।(जैसे कि, आध्यात्म विद्या , हेतु विद्या, शब्द विचार, चिकित्सा विद्या और शिल्प विद्या जिनमें से एक बौद्ध को शिक्षा की एक कठोर व्यवस्था से गुज़रना पड़ता है, जिसके अन्तर्गत सभी विषय आते हैं। ऐसा समझा जाता है कि बोधिसत्व भी बुद्ध नहीं बन पाते अगर वे पंच विद्याओं में पारंगत नहीं होते। बौद्ध मठ शिक्षण के उच्च केन्द्र बन गए। पंच विद्या ने बौद्ध कला को सीखने के लिए एक बृहत संभावना दी। व्यक्तिगत लगन, साथ में अपने मत को तीव्रता से आगे बढ़ाने की इच्छा ने शिल्पियों को कला के उत्कृष्ट नमूनों को घड़ने में सक्षम बनाया। यह विकास निरन्तर जारी रहा चाहे वह बौद्ध राजा का शासन काल हो या न हो। अत: यह अतिशयोक्ति नहीं होगी अगर हम भारतीय कला को मुख्यत: बौद्ध कला कहें।

बौद्ध कला के अध्ययन में मुख्यत: दो कठिनाइयां आती हैं। जैसे कि पहली कठिनाई इसके उद्भव के सही काल को तय करने में आती है तो दूसरा बुद्ध को मूर्ति के रूप में दिखाने के काल को लेकर। दूसरी कठिनाई पहली कठिनाई से तीव्र है। जैसा कि, दोनों का बौद्ध कला के महत्वपूर्ण पहलुओं पर सीधा असर है, इन पर विस्तार से बहस की आवश्यकता है। यह सही है कि बौद्ध कला के पहले चिन्ह सम्राट अशोक की कला में दिखते हैं जोकि बुद्ध के महापरिनिर्वाण और सम्राट अशोक के काल के दो शताब्दियों के बीच में आते हैं। ऐसा क्यों है? क्यों सम्राट अशोक से पहले बौद्ध स्मारक नहीं पाए जाते? क्यों बौद्ध कला को बुद्ध के एकदम बाद कोई संरक्षण नहीं मिला? ऐसा नहीं है कि बुद्ध के बाद राजकीय सहायता चाहिए थी। अनुमानत: संघ की आवश्यकताएं न्यूनतम थीं क्योंकि इन्हें स्थायी गृह नहीं चाहिए थे। शायद लकड़ी की ढांचों को तवज्जों दी गई जोकि नष्ट होने वाले थे। संघ हमेशा चलायमान था और वह सिर्फ वर्षाकाल में ही एक जगह ठहरता था। यह दलील भी दी जाती है कि शुरू में बौद्ध कला से प्रतिरूप गायब थे जोकि एक कोरी गप्प लगती है। स्तूप व दाह टीलें निश्चित रूप से विद्यमान थे।

दूसरा कठिनाई ज़्यादा गम्भीर है। कला के इतिहासकार मानते हैं कि प्रथम बुद्ध के प्रतिरूप गंधार में बने (प्रथम व दूसरी शताब्दी)। यह भी तर्क दी जाती है, कि यह भगवान बुद्ध के असली शिक्षा से मेल नहीं खाते इसलिए प्रतिरूपों की आवश्यकता महसूस नहीं की गई। ऐसा कहा जाता है बौद्ध कला के शुरूआत में बुद्ध को प्रतीकों से दर्शाया जाता था। कुछ ग्रीक मत से ग्रस्त लोग यह कहने में नहीं हिचकते कि बुद्ध के प्रथम प्रतिरूप ग्रीक व युरेशियाई कलाकारों द्वारा गंधार में घड़े गए। लेकिन जब ग्रीक सिद्धांत पर सवाल उठाए गए तो एम. फाऊचर के अनुसार यह प्रश्न यूरोपीय विद्यार्थियों में सौन्दर्य पक्षपात और भारतीय विद्यार्थियों में राष्ट्रीय भावनाओं के कारण पैदा हुए कुछ का मत है कि बुद्ध के प्रतिरूप महायान के उद्भव के बाद सोच में आए।

यह बात सच है कि बुद्ध के प्रथम प्रारूप गंधार या मथुरा से आए। लेकिन ऐसी कोई बात नहीं है जिससे यह लगे कि शुरू में मूर्ति उपासना नहीं थी। यह भी गलत है कि मूर्ति पूजा बुद्ध की इच्छा के विरूद्ध था। वहीं यह बात पूर्णतय: गलत है कि बुद्ध के प्रथम प्रतिरूप को ग्रीक शिल्पियों ने गढ़ा था। हड़प्पा की संस्कृति में मूर्ति पूजा विद्यमान थी, शायद वैदिक काल के देवों को मानुष रूप में दिखाया नहीं जाता था। लेकिन उसके बाद, ब्राह्मण, सूत्रों व पुराणों में इन रूपों के बारे में बताया गया है। पातांजलि के द्वारा

पाणिनि (V-3.99) परा व्याख्या के दौरान शिव, सकन्द व विशाख के प्रतिरूपों को दर्शाने की बात आती है। भक्ति की लोकप्रियता ईश्वरवादी पूजा के विकास के साथ हुआ। आदिम लोगों व अनार्य उन लोक विश्वासों में आस्था रखते थे जिसमें यक्ष व नागों की पूजा रक्षक देवों के रूप में की जाती थी। वे देवियों की पूजा करते थे जो उर्वरता को दर्शाती थी।

भगवद् गीता (VI.10.21) में बैठे हुए योगी का सुचित्रिक वर्णन है। बौद्ध धर्म जनजातीय गणराज्यों और आदिवासी आदिम लोगों के बीच पैदा हुआ और फला-फूला जोकि मूर्ति पूजक थे। इस प्रकार बुद्ध कैसे इनके पुरातन चलन को नकारते?

महात्मा बुद्ध कहीं भी मूर्ति पूजा के खिलाफ नहीं दिखाई देते। ध्यान की अवस्था को पाने के लिए एक भक्त को किसी एक वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ता था (जो कि बुद्ध है)। महात्मा बुद्ध ने इसे समाधिराजा सूत्र (4-13, पेज 21) में बताया है। दोबारा, एक कहानी है, बुद्ध के निर्देशानुसार राजा विम्बसार ने राजा उदयन को विश्वव्याक प्रतिमान भेजा। इसके नीचे निरन्तर कारण उपस्थित करने का कार्य सिद्धांत को प्रतीत्यसमुत्पाद अनुलोम एवं प्रतिलोम क्रम से लिखा था।

इन ग्रन्थों में कई बार संदर्भ आता है कि जहाँ पर बुद्ध से यह कहलवाया जाता है कि बुद्ध की मूर्ति को बनाना और पूजा करना उत्तम कार्य है। तिब्बती विनय पिटक में यह कहा गया है कि गृहपति अनाथ पिण्डिक द्वारा तथागत को जेतवन दान करने के उपरान्त उनसे बुद्ध के चित्र के रेखांकन की अनुमति मांगी। इस प्रार्थना को स्वीकार किया गया।

उदयन-आवदन में भी बुद्ध के प्रतिरूप का ज़िक्र आता है। आगम साहित्य में भी बुद्ध के अपने समय में बुद्ध के प्रतिरूप को बनाने की बात को माना गया है। इस प्रकार बुद्ध के निर्वाण के पश्चात बनारस के लोगों द्वारा विनय करने पर चंदन की लकड़ी पर उनका प्रतिरूप बनाया गया। इसे महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद प्रथम बुद्ध प्रतिरूप माना जाता है। इस प्रकार मूल साहित्य में बुद्ध के समय में ही मूर्ति पूजा विद्यमान होने की पर्याप्त सूचना मिलती है। अधिकतर पश्चिमी विद्वान जैसे कि, एम० फाऊचर, एम० ब्लॉकट, जी०डी० लॉरेन्जो, जे० डबरिऊल आदि ग्रीक कला की उत्कृष्टता से ग्रसित हैं। उन्होंने इस पर विश्लेषण पढ़ने से पहले ही कर दिया है न कि पढ़ने के उपरान्त। यह प्राकृतिक ही है कि वह पूर्वीय कला से भेदभाव पूर्ण रवैया रखते हैं। एक कला का दूसरे कला पर अपना प्रभाव डालने को नकारा नहीं जा सकता परन्तु यह कहना कि यह विचार पूर्णतया ग्रीक है, जंचता नहीं। इस प्रकार समय आ गया है कि इसका मूल्यांकन स्वतन्त्र तरीके से हो तथा एक क्षेत्र विशेष के प्रभाव को पहले ही न लिया जाए। गंधार के भूगोलीय स्थिति के कारण शुरू से ही यह एक बहुजातीय नगर रहा है। और अधिक तथ्य प्रकाश में आए हैं कि यह रोमन राज्य के अधीन रहा है। अत: गंधार कला के लिए प्रयुक्त "ग्रीको-बुद्धिस्ट कला" पुराने शब्द को अब "रोमानो-बुद्धिस्ट" में बदलना चाहिए। यह समझा जाता है कि गंधार कला को हैलेनिस्टिक मॉडल से लिया गया है खासकर, एलेग्ज़ेन्ड्रीया साम्राज्य के बाद जैसे कि बेक्ट्रिया। लेकिन बेक्ट्रिया ने शास्त्रीय शैली में कोई भी स्मारक नहीं बनाया और इनका एक कलात्मक उपलब्धि स्तरीय सिक्कों को दिया जाता है। दोबारा, हैलेनिज़्व व गंधार कला को लम्बी अवधि अलग करती है जबकि, पहला, तीसरे और पहली शताब्दी ईसा पूर्व के बीच फला फूला तथा दूसरे का दूसरी शताब्दी ईसा बाद विकास हुआ।

स्तूप :

बुद्ध व संघ के दिवंगत सदस्यों के अवशेषों के ऊपर बनने वाले स्मृतियों को स्तूप के रूप में खड़ा किया जाता था या अर्ध गोलाकार दफनाने का टीला या फिर यह ढांचा तरीनुमा पत्थरों से घिरा हुआ जोकि (हमेशा नहीं) जंगले से घिरा हो। इसके चारों तरफ सूर्य के परिक्रमा पथ अनुसार बाएँ से दाएँ भक्ति भाव से चक्कर लगाया जाता है। जैसा कि, स्तूप का आकार इसके गुम्बद के अण्डाकार रूप में परिवर्तित होने पर भी इसका भवन निर्माण का तरीका वैसा ही रहा लेकिन इसमें परिवर्तन बाहरी ही था तथा जोकि अपरिवर्तित ही रहा।

स्तूप शब्द का अर्थ समय-समय पर बदलता रहा। मूलत: इसका मतलब शिखर गोलक , फिर शीर्ष कोणक फिर चोटी और आखिर में टीला (mound) हुआ। इस प्रकार, स्तूप एक दफनाने का टीला है, और इसकी उत्पत्ति प्रागैतिहासिक काल तक जाती है। धातु कहे जाने वाले इन अवशेषों को विभिन्न वर्गों में बांटा जा सकता है जैसे कि, शारीरिक या देह सम्बन्धी उद्देसिका या स्मारकीय, परिभोगिक या वह वस्तुएँ जो बुद्ध के प्रयोग की हों, पवित्र स्थान, पवित्र वृक्ष आदि और यहाँ तक कि पवित्र ग्रन्थ भी।

बुद्ध के परिनिर्वाण के उपरान्त, पवित्र अवशेषों पर भागीदारी जताने वालों में अजातशत्रु, लिच्छवी, शाक्या, बुली, मल्ल , कोलिय, और वेथद्वीप का एक ब्राह्मण भी था। लेकिन पीपलवन के मौर्य बाद में आए, इस प्रकार उन्होंने सिर्फ कोयले को इकट्ठा किया। शुरू में 8 स्तूपों की स्थापना हुई, हालांकि ऐसा उल्लेख आता है कि 16 राज्यों में 16 स्तूप स्थापित किए गए। बाद में सम्राट अशोक ने इन पवित्र अवशेषों को खोद कर विभिन्न क्षेत्रों में ले जाकर 80,000 स्तूपों का निर्माण किया। स्तूप शब्द चैत्य का पर्याय है, जैसे कि इसका अर्थ भी टीला होता है। चैत्य शब्द को चिता शब्द से लिया गया है। लेकिन बाद में चैत्य को पूजा स्थल,

वेदी या फिर एक मन्दिर के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा। इस प्रकार, वस्तुत: आवश्यकताओं से चैत्य एक धार्मिक शब्द है और स्तूप दफनाने के टीले के लिए प्रयुक्त एक वास्तु-शास्त्रीय शब्द है।

नेपाल की सीमा पर स्थित पीपरवाह में C 450 ईसा पूर्व में ईंट से बने स्तूप का अवशेष है। सांची व बहरूत की मूर्तिकला में शुरूआती स्तूप मिले हैं। लेकिन छज्जे, दरवाज़े और पत्थर शिल्प को लगभग एक शताब्दी बाद इस में जोड़ा गया।

मूर्ति कला :

महापरिनिर्वाण से लेकर मौर्य काल तक बौद्ध कला का कोई निशान नहीं मिलता। शायद उस समय के शिल्पी लकड़ी के मकान बनाते थे जो कि खत्म हो गए। पहले पहल भारतीय पत्थर की मूर्ति घड़ने की कला अशोक के काल से अपने भव्य रूप में पाई जाती है। उसने धर्म चक्र को अपने स्मारकों व स्तम्भों पर उकेरा। सारनाथ के स्तम्भ में चारों तरफ से शेर के मुख हैं जोकि जगत के चार कोणों की तरफ अभिमुख हैं। उन्हें गोलाकार पत्थर के ऊपर स्थापित किया है जिसे उल्टे कमल पर टिकाया गया है। गोलाकार ढोल के आकार को जीव जन्तुओं से सजाया गया है जिसे धर्म चक्र ने साध कर रखा है। यह वही चक्र है जिसे बुद्ध ने सारनाथ के मृगदाव में पहले प्रवचन के समय घुमाया था। यह चक्र कई अन्य प्रतीकों को दर्शाता है जैसे, धर्म शिक्षा, सूर्य, जन्म और पुनर्जन्म का चक्र तथा सम्प्रभुता आदि। सारनाथ में खम्बे के मस्तक पर शेर तथा रामपूर्वा के पत्थर में बना बैल सचमुच में ताकत और अभिव्यक्ति के अद्‌भूत नमूने हैं। अशोक ने अपने सभागार के लिए बहुत मात्रा में दूसरे देशों की कलाओं को अपनाया। इस प्रकार स्तम्भों के लिए आकमेनिद के मॉडल को अपनाया। जानवरों की जीवन्त आकृतियों में हैलेनिस्टिक कला का प्रभाव साफ दिखता है। धार्मिक क्षेत्र में, टुटलेरी देवों जैसे कि, यक्ष और यक्षियों में आत्मिक भाव से ज़्यादा, आकार, भार और रूप का ज़्यादा प्रभाव है।

सांची स्तूप-1 के असली ढांचे को अशोक ने बनाया था। इन्हें पहली शताब्दी और एक शताब्दी ईसा बाद के मध्य तराशे गए द्वारों द्वारा बढ़ाया व सज़ाया गया। इसके अतिरिक्त, बरहूत स्तूप (एक शताब्दी ईसा पूर्व) और सांची को भी द्वारों व तराशे हुए छज्जों द्वारा सजाया गया। मूर्ति कला में, बुद्ध aniconic है तथा उन्हें प्रतीकों द्वारा दर्शाया गया है जैसे कि बोधि वृक्ष, पद चिन्ह, चक्र , छत्र व स्तूप आदि। छज्जों, बीमों खासकर सांची में छज्जों के विषय बुद्ध की जीवनी और जातक कथाओं को दर्शाते हैं। दोनों स्थानों के छज्जों व द्वारों पर पौराणिक यक्ष और यक्षियों को रक्षक देवों के रूप में दिखाया गया है। बरहूत के छज्जे कठोर, बिखरे व दृढ़ हैं। इन्हें निम्न छज्जों में तराशा गया है। मनुष्यों के शरीर पुरातन समय से हैं। सांची में छज्जों को खुला रखा गया है और द्वार ही तराशे हुए हैं जो वर्तमान जीवन शैली को दर्शाते हैं। आकृतियां जीवन्त कला को दर्शाते हैं जबकि छज्जे प्राचीन हैं। लगभग एक शताब्दी ईसा बाद गंधार बौद्ध कला के फलवान केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। गंधार उत्तरी पश्चिमी सीमान्त जोकि पैशावर के ईर्द गिर्द स्थित है अपनी भौगोलिक स्थिति तथा भारत व रोमन साम्राज्य के बीच व्यापारिक रास्ते से जुड़े होने के कारण परदेशी प्रभाव से यहां संकर व ग्रहणशील कला विकसित हुई। गंधार की मूर्ति कला पूर्णतया बौद्ध है। बुद्ध के शरीर में जो चोगा पहनाया गया है वह लगभग घुटने से नीचे है। बुद्ध का सिर ग्रीक अपौलो की याद दिलाता है। कान लम्बे हैं तथा बाल लम्बे व लच्छेदार। अधखुली आंखें अलौकिक शान्ति की तरफ इशारा करती हैं। तराशी गई मूर्तियाँ गोलाकार नहीं हैं, शायद इन्हें आले में स्थापित किया जाता होगा। ओढ़े गए वस्त्र अत्यधिक होने से बुत प्राचीन/पुरातन लगते हैं। कई बार गढ़ी गई मूर्तियाँ बुद्ध के प्रतिरूपों में आवश्यक आध्यात्मिकता दिखाने में असमर्थ दिखती हैं।

मथुरा में भी गन्धार के साथ-साथ विकास आरम्भ हुआ। जैसा कि, मथुरा पूर्णतया: भारतीय संस्कृति में स्थिर थी, इस प्रकार यहां देशज कला का विकास हुआ। जैसे कि, यह कुशाणों के दोनों में से एक महत्वपूर्ण व्यापारिक व सांस्कृतिक केन्द्र था अत: यह स्वाभाविक था कि यह या तो गंधार कला को प्रभावित करता है फिर खुद इससे प्रभावित होता। यह गुप्त काल में भी फलता फूलता रहा और चरम सीमा तक पहुँचा। इस समय की मूर्तियां अपने धैर्य, सुन्दरता और अध्यात्मिक अनुभूति के लिए जानी जाती हैं। बुद्ध अपनी नीची झुकी पलकों द्वारा अध्यात्मिक भावातिरेक लिए सभी के प्रति अपनी करूणा की अनुभूति कराते हैं। कई नए विचारों को सामने लाया गया। उरना एक साधारण उठा हुआ बिन्दु बना, और उनीसा गोलाकार।

दक्षिण में अमरावती सतवाहनों के काल में बौद्ध कला का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना। आज यह एक फैला हुआ खण्डर है। अमरावती के साथ नागार्जुन कोण्डा स्थित था। जहां पर खुले विहार बनाए गए। यह नागार्जुन का गृह क्षेत्र था, जोकि महायान के संस्थापक थे और मध्यक सिद्धान्त के जन्मदाता। दोनों केन्द्र हीनयान तथा महायान विचारों को दिखाते हैं। लेकिन इनका महान योगदान स्तूपों को सजाने में है, जहाँ छज्जे पहले की तरह न सिर्फ धरातल पर लेकिन गोलाकार स्तम्भों और अर्धगोलाकार गुम्बदों पर भी उकेरे गए। अमरावती में, शरीर को छरहरा व कोमलता लिए खड़ा या फिर चलायमान दिखाने को प्राथमिकता दी गई है। विषयों को जातक या फिर बुद्ध के जीवन से लिया गया है।

गुप्त वंश ने ब्राह्मण धर्म को संरक्षण दिया। लेकिन बौद्ध धर्म की लोकप्रियता को देखते हुए उन्होंने धर्म के प्रति उदारवादी धार्मिक रूख रखा। नालन्दा एक छोटे से मठ से बढ़ कर एक विश्व-विद्यालय बन गया जोकि महायान अध्ययन का महान केन्द्र बना मथुरा व सारनाथ गुप्त कला के महत्वपूर्ण केन्द्र थे। हालांकि गुप्त काल का अन्त 550 ईसा बाद हो गया, लेकिन गुप्त कला की शैली आठवीं शताब्दी के मध्य तक रही।

अजन्ता व ऐलोरा गुफा-मन्दिरों के रूप में भवन निर्माण कला का भी बहुत विकास हुआ।

इस युग में मानव शरीर महत्त्वपूर्ण हो गए; मूर्तिकारों द्वारा पेड़-पौधों को मुख्य भाव में प्रयुक्ततों होने लगे लेकिन सिर्फ सजावट के लिए। उकेरी गई मूर्तियां सरलता, अध्यात्मिक शान्ति और पारदर्शी ओढ़नी के लिए जानी जाती हैं। इन्द्रिय सुख व अध्यात्म के बीच पूर्णतया संतुलन को बनाए रखा गया है। मथुरा के मूर्ति शिल्प में को ज़्यादा परिपक्वता पाई गई है। गन्धार कला के प्रभाव से मुक्त सारनाथ ने शास्त्रीय बौद्ध कला का प्रादुर्भाव किया है।

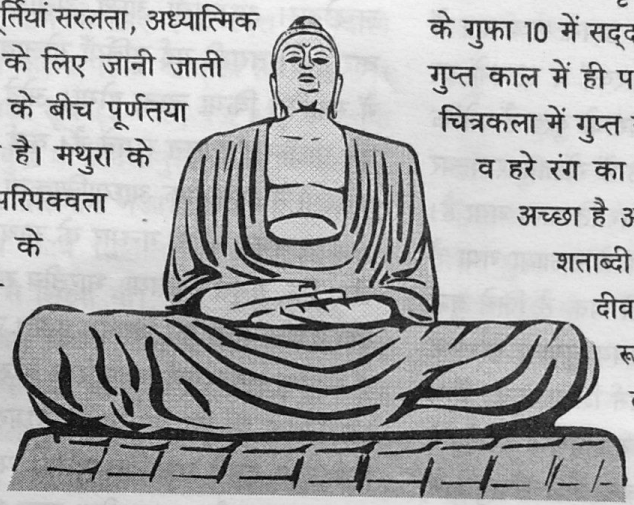

बुद्ध के अंग-विन्यास नियमों के अधीन विशेष मुद्राओं में बनाए गए हैं, जिन्हें आसन व मुद्रा के रूप में जाना जाता है। कुछ मुद्राएं जैसे : ध्यान मुद्रा , भूमि स्पर्श मुद्रा और धर्म चक्र मुद्रा आदि हैं। गुप्त कला का उत्कृष्ट नमूना सारनाथ में बुद्ध को धर्म चक्र को घुमाते हुए दर्शाने वाली मूर्ति शिल्प है। यहाँ पर बुद्ध को योगिक मुद्रा में बैठे दर्शाया गया है, उनके हाथ धर्म चक्र को घुमा रहे हैं (धर्म चक्र मुद्रा) पारदर्शी वस्त्रों में अंग विन्यास साधारण है लेकिन पीछे के भाग को बहुत महीन उकेरा गया है।

इसी काल के साथ (750 ई०-1150ई०) पालों के अधीन बंगाल व बिहार में बौद्ध कला फला फूला। नालन्दा कला का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बना, और इसने दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों के साथ प्रगाढ़ सम्बन्ध स्थापित किए। पालदेव के एक ताम्र-पत्र अभिलेख में स्वर्ण द्वीप के बालपुत्र द्वारा (860ई०) नालन्दा में मठ के निर्माण का ज़िक्र है। दूसरे देश जो नालन्दा के सम्पर्क में आए वे नेपाल व बर्मा थे। मयूर भंज में शास्त्रीय परिपाटी को अपनाया गया जोकि पहले गुप्त काल में विकसित हुआ था।

यहाँ पर तकनीक और रूपाकार में अत्यधिक प्रवीणता है, लेकिन इसमें मौलिकता व उष्णता की कमी है। फिर भी, इस काल को दो कारणों से जाना जाता है।

1) आठवीं व नवीं शताब्दी में वज्रयान कला उत्तरी पूर्वी भारत से नेपाल व तिब्बत में फैली।

2) इस कला ने खासकर नालन्दा ने इंडोनेशियाई बौद्ध कला पर बहुत प्रभाव डाला।

ग्याहरवीं व बारहवीं शताब्दी में तुर्कों द्वारा भारत पर आक्रमण भारत में बौद्ध कला के लिए घातक सिद्ध हुआ।

चित्रकला :

चित्रकला का अतीत बहुत पुराना है। जातक, दूसरे बौद्ध व ब्राह्मण साहित्य में इनका ज़िक्र आता है। इसके शुरूआती लक्षण अजन्ता के चैत्य गृहों में दूसरी सदी ई० पूर्व में दिखते हैं। अजन्ता के गुफा 10 में सद्दान्त जातक का चित्रण है। फिर भी, अजन्ता गुप्त काल में ही परिपक्वता पा सकी वास्तव में, मूर्ति शिल्प व चित्रकला में गुप्त का ही प्रभाव है। मुख्यत: लाल, पीले गैरूआं व हरे रंग का प्रयोग हुआ है। रंगों का इस्तेमाल बहुत ही अच्छा है और भित्ति चित्रों को पहली शताब्दी से सातवीं शताब्दी तक संरक्षित रखा गया है। स्तूप और मठ की दीवारों को चित्रों तथा शैल-उत्कीर्णन द्वारा सुन्दर रूप से सजाया गया है। इसमें सुगठित शरीर लोच , कोमलता, सौन्दर्य और पूर्ण अध्यात्मिक स्थिरता और करूणा अपने पूर्ण परिपक्वता को पहुँचते हैं। अजन्ता के भित्ति-चित्र बुद्ध के जीवन व जातक कथाओं को दर्शाते हैं। इनमें चाहे वे मानव और जानवरों की आकृतियां हो, में एक पौरूष, आकर्षण व जैव शक्ति है। रेखांकन बहुत साहसिक और उत्कृष्ट हैं। इनमें भाव व भंगिमाएं प्राकृतिक सहजता लिए हैं। यह इस लिए सम्भव हुआ क्योंकि एक महायान कलाकार के पास उस वक्त मौजूद वे सभी विकल्प जो एक तरफ सापेक्ष सच्चाई जो प्रायोगिक यथार्थ, मानव जीवन और क्रियाकलापों को स्वीकारता है और दूसरी तरफ पूर्ण सत्य जो इन सब से परे है , लेकिन जिसकी चित्रों व उपमाओं द्वारा ही परिकल्पना की जा सकती थी, के मध्य था। इसलिए अजन्ता की बौद्ध चित्रकला असामान्य है क्योंकि वह अभिव्यक्ति और अनुभूति में प्राकृतिक सहजता लाते हैं।

एक और शास्त्रीय चित्रकला का मुख्य केन्द्र बाघ था। हमें गुफा न० 4 की दीवारों में कुछ बौद्ध चित्रकला नमूने मिलते हैं। यह अजन्ता शैली का अनुसरण करता है और इसकी मुख्य विषय-वस्तु बौद्ध है। यह चित्रण धर्मनिर्पेक्ष है क्योंकि अधिकांशत: यह समकालीन जीवन का चित्रण करता है।

अनुवाद - बलदेव घरसंगी

पाले से फसलों को नुकसान : कारण और बचाव

डॉ. मोहन सिंह जाखड़

पृथ्वी की सतह और उस पर स्थित वायुमंडल में निरन्तर घटित होने वाली मौसम की घटनायें अपनी विषमता अनियमितता के कारण हमारी नियन्त्रण क्षमता के बाहर होती है। अत: उनकी प्राकृति सही जानकारी प्राप्त करना जितनी कठिन है उतनी जरूरी भी है। किसानों द्वारा अपनी फसलों को पाले से बचाने का इतिहास पानिनी (77 ई० पू०) के समय से भी पूराना माना जाता है। सन् 1896 में हैमन नाम के एक वैज्ञानिक ने पाला के प्रकोप से फसलों को बचाने के निम्न तरीके बताए थे जो आज भी उतने ही महत्त्वपूर्ण तथा कारगर है, जितने उस समय में थे :-

1. रात के समय पृथ्वी से निकले वाली दीर्घ तरंग विकिरणों को कम करना।
2. हवा में नमी की मात्रा को बढ़ाना।
3. हवा को गर्म करके इसका तापमान बढ़ाना।
4. ठण्डी हवा को पाला सम्भावित क्षेत्र से बाहर निकालना।
5. गर्म व ठण्डी हवा की परतों को न बनने देना।
6. ठण्डी व गर्म हवा की पतरों को आपस में मिला देना।

पाला क्या है?

जब पृथ्वी के धरातल तथा वायु का तापमान गिर कर इस स्तर तक पहुंच जाए कि जमीन की सतह या दूसरे खुले सतहों पर वायुमण्डल की नमी संघनित होकर क्रिस्टलीय बर्फ के रूप में जम जाए, तो उसे पाला कहते हैं। कुछ लोग जमी हुई ओस को ही पाला कहते हैं परन्तु यह बिल्कुल ठीक नहीं है। पाला और जमी हुई ओस दोनों अलग-अलग कारक है। पाला के बनने की क्रिया ओस की भांति ही होती है, परन्तु ओस के समय तापमान ओसांक से नीचे होता है, जबकि पाला के समय तापमान हिमांक से नीचे होता हैं। दोनों ही रात्रि या प्रात:काल की घटनाएं है, जिसमें वायु शान्त व आसमान साफ होना चाहिए। एक और मौसम कारक है कुहरा जिसको कुछ लोग पाला ही समझते है। परन्तु यह भी पाला से बिल्कुल अलग है। जब वायु का तापमान इस स्तर तक गिर जाए कि जल वाष्प संघनित होकर पानी के कणों में बदल जाए और ये पानी के कण किसी सतह पर न जमकर हवा में ही लटके रहे तो उसे कुहरा कहते हैं। वास्तव में ये एक प्रकार के मेघ (स्ट्रेटस) होते है जो या तो पृथ्वी सतह के बिल्कुल नजदीक या उस पर टिके रहते हैं। इनके कारण आर्द्रता बहुत कम हो जाती है। कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर ओस व कोहरा फसलों के लिए लाभदाय ही होते हैं परन्तु पाला सदा नुकसानदायक व घातक होता है।

अनुकूल परिस्थितियां :

पाला पड़ने के लिए निम्नलिखित परिस्थितियों का अनुकूल होना बहुत जरूरी है। इनकी अनुपस्थिति में पाला नहीं बन पाता। जैसे: -

1) सतह जिस पर पाला बनता है उसका तापमान शून्य या इससे कम होना चाहिए।
2) आस-पास की वायु शून्य या इससे थोड़ा कम तापमान पर संतृप्त होनी चाहिए।
3) छोटे-छोटे कण उपस्थित होने चाहिए (nuclei) जिन पर 'सबलीमेशन' क्रिया हो सकें।
4) जमीन व अन्य सतहों का आकाश के नीचे खुला होना।
5) शान्त व हल्की पवनें चलना।
6) नरम, खुली व जोती हुई मिट्टी।
7) मिट्टी का शुष्क होना।
8) जमीन की सतह पर हरे-घास व खरपतवारों की चदर बिछी होना।
9) ठण्डी व शुष्क पवनों का दूसरे ठण्डे स्थानों से पाला प्रभावित क्षेत्रों में आकर ठहर जाना।
10. पेड़-पौधों का बीमार व कमजोर होना।

नुकसान कैसे करता है?

पाला पेड़-पौधों व फसलों को दो तरह से हानि पहुंचाता है। एक, जब पाला पड़ने से पादप कोशिका के अन्दर का पानी शून्य तापमान के कारण जमकर बर्फ के क्रिस्टल में बदल बन जाता है। इस प्रकार जीवद्रव्य के जमने से उसका आयतन बढ़ जाता है जिससे कोशिका फट जाती है तथा मर जाती है। दूसरा, पाला पड़ने से गिरते हुए तापमान के कारण जब दो कोशिकाओं के बीच का पानी जम जाए तो पानी कोशिका के अन्दर नहीं जा पाता तथा जीवद्रव्य पानी की कमी के कारण सिकुड़ कर मर जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जागृत तथा क्रियाशील कोशिका यानि बढ़ते हुए पेड़-पौधों के लिए पाला बहुत हानिकारक तथा घातक है।

बचाव :

बगीचों व फसलों को लगाने से पहले निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए ताकि बाद में फसलों में पाले से कम से कम नुकसान हो।

- साधारणतया उत्तरी पर्वतों में दक्षिण-पश्चिम भाग की अपेक्षा उत्तरी उत्तरी-पूर्वी भाग ज्यादा नम होते हैं। अत: उत्तरी ढलान पर 2200 मीटर तक की ऊंचाई तक सफल बागवानी हेतु स्थान का चुनाव करना चाहिए।
- समतल घाटियां बागवानी के लिए अनुपयोगी मानी जाती है क्योंकि ये पाला संभावित क्षेत्रों में आती हैं तथा यहां पाला से अधिक क्षति होने की सम्भावना होती है। अत: ऐसे स्थानों की अपेक्षाकृत ऊंचाई वाले स्थान जहां हवा का आगमन आसानी से होता है, चयन करना चाहिए।
- पहाड़ों की ऊपरी चोटी तथा अधिक ढालू भाग भी बागवानी के लिए अनुपयोगी होते हैं क्योंकि यहां हवा आमतौर पर तेज होती है तथा ये क्षेत्र अपेक्षाकृत सूखे व कम उपजाऊ होते हैं।
- अधिक ढलान वाले क्षेत्रों का भी बागवानी के लिए चुनाव नहीं करना चाहिए क्योंकि ये स्थान भी अपेक्षाकृत सुखे, कम उपजाऊ तथा अधिक कटाव से ग्रस्त होते हैं।
- कुछ फसलें जैसे कि सब्जियां आदि के बीजने के समय में फेर-बदल करके भी फसलों को पाले के प्रकोप से बचाया जा सकता है।
- जिस रात आसमान साफ व शांत हो तथा हल्की व ठण्डी पवनें बह रही हो तो उसे रात पाला पड़ने के अधिक आसार होते हैं।
- स्थिति का अंदाजा लगाकर अपनी फसलों में सिंचाई लगाए। सब्जियों में तो वैसे भी 3-4 दिनों के बाद सिंचाई लगानी होती है।
- अपने खेतों की मेढ़ों आदि पर घास-फूस आदि से कई जगहों पर थोड़ी-थोड़ी आग जलाकर धुआं पैदा करें। इस प्रकार की आग आधी रात के बाद करनी चाहिए। क्योंकि पाला आमतौर पर आधी रात के बाद ही पड़ता है। यदि ईंधन व मज़दूर पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो तो फसलों को पाले से बचाने का यह एक उत्तम व कारगर तरीका है।
- छिड़काव-सिंचाई प्रणाली से फसलों के पत्तों पर पानी की पतली परत बनाकर भी इनको पाले के प्रकोप से बचाया जा सकता है। इस प्रणाली द्वारा थोड़े पानी से अधिक पौधों/फसलों को बचाया जा सकता है।
- जैसा कि पाला शान्त व साफ आकाश वाली रात को पड़ता है। बगीचों में हवा बहाव बनाए रखन के लिए कुछ बड़े पंखे या पवन मशीनों का प्रयोग भी किया जा सकता है। विदेशों में यह तरीका काफी प्रचलि है।
- प्लास्टिक, कपड़े, कागज, गत्ते, टोकरी, घास-फूस और टाट आदि से छोटे पौधों, नर्सरी, सब्जियों, आदि को शाम को ढक दें तथा सुबह हटा दें। ऐसा करने से इनका तापमान हिमांक से नीचे नहीं जाएगा तथा पाला से बच जाएंगे।
- पौधों को पाले के प्रकोप से बचाने के लिए तथा इनमें पाला को सहन करने की शक्ति को बढ़ाने के लिए कुछ रसायानों का भी प्रयोग किया जा सकता है। जैसे:- प्रोपियोनिक अम्ल 100 पी. पी. एम. के हिसाब से 8-10 के अन्तराल पर छिड़काव कर सकते हैं।
- पाला सम्भावित क्षेत्रों में पौधों की कांट-छांट इस प्रकार करें कि उनके तने अपेक्षाकृत लम्बे हो, जो फल-फूलों को नीचे की ठण्डी हवा की परत से बचाया जा सके।
- अपनी फसलों व पौधों को खाद-पानी भरपूर मात्रा में दें क्योंकि स्वस्थ पौधे बीमार व कमजोर पौधों की अपेक्षा पाले को अधिक सहन कर सकते हैं।
- खरपतवार व घास आदि को काटकर जमीन को साफ रखें, क्योंकि हरी-परत की अपेक्षा साफ जमीन पर पाला बहुत कम पड़ता है।
- संभव हो तो पाला सम्भावित अवधि में सिंचाई का विशेष प्रबन्ध करना चाहिए। अपनी फसलों व बगीचों की जमीन को नम रखें, यह सुखने न पाए।
- पाला सम्भावित अवधि में किसी भी स्थिति में जमीन को मत छेड़े। क्योंकि जो ऊष्मा पाला पड़ने को रोकती है वह जमीन की ऊपरी 15 सै. मी. तह में ही होती है। जमीन को जोतने, नराई, गुड़ाई करने आदि से इस ऊष्मा का नाश होता है तथा यह बाहर निकल जाती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ऊपर लिखित सब बातों को ध्यान में रखकर तथा इनको अपना कर हम अपनी फसलों व पेड़-पौधों को पाला के प्रकोप से काफी हद तक बचा सकते हैं तथा इसके कारण पैदावार में होने वाली हानि से बच सकते हैं।

आईये, लिखिये, पढ़िये, आईये, लिखिये, पढ़िये, आईये, लिखिये, पढ़िये, आईये, लिखिये, पढ़िये, आईये, लिखिये, पढ़िये,

स्वंगला एरतोग

उद्देश्य

1. सांस्कृतिक विरासत को संजोना व संकलित करना व उन्हें प्रकाश में लाना, पुनर्जीवित व संवर्धित करना।

2. लोक विधाओं को चिन्हित करना जो लुप्त होने के कगार पर हैं।

3. साहित्यिक रुचियों का विकास व सृजन के प्रति रुझान पैदा करना।

4. सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक उत्थान के लिए एक मंच बनाना जहां विचारों का सम्प्रेषण एवं जन प्रतिक्रिया का आकलन संभव हो।

स्वंगला एरतोग

लाहुल-स्पीति में कला व संस्कृति
उत्थान हेतु सोसाइटी (रजि०)

पोस्ट बॉक्स 25,
मुख्य डाकघर ढालपुर,
कुल्लू 175 101 (हि० प्र०)

सोसाइटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21, 1860 के अधीन पंजीकृत संख्या ल० स०/42/93

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि० के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार द्वारा पंकज प्रिंटर्ज घुमारवीं,(मो. 9816155326) से टाईप सैटिंग तथा मुद्रित एवं नीरामाटी, ज़िला कुल्लू हि. प्र. से प्रकाशित। संपादक सुश्री डा० छिमे शाशनी